



भारत सरकार

भारत का विधि आयोग

रिपोर्ट सं. 273

‘यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार  
या दंड के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन’ का विधान के  
माध्यम से कार्यान्वयन

अक्टूबर, 2017

डा. न्यायमूर्ति बलबीर सिंह चौहान  
पूर्व न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय  
अध्यक्ष  
भारत का विधि आयोग  
विधि और न्याय मंत्रालय  
भारत सरकार



Dr. Justice B.S. Chauhan  
Former Judge, Supreme Court of India  
Chairman  
Law Commission of India  
Ministry of Law & Justice  
Government of India

डी.ओ. सं. 6(3) 314/2017- एल.सी.(एलएस)

30 अक्टूबर, 2017

प्रिय श्री रवि शंकर प्रसाद

केन्द्रीय सरकार ने, सिविल रिट याचिका [रि.या. (सिविल) सं. 2016 की 738] का उल्लेख करते हुए तारीख 8 जुलाई, 2017 के अपने पत्र द्वारा विधि आयोग को “यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन के अनुसमर्थन, से संबंधित विवाद्यक की परीक्षा करने का अनुरोध किया था।

इस पृष्ठभूमि में विधि आयोग ने कन्वेंशन के प्रति निर्देश में अन्तरराष्ट्रीय दृश्य-विधान, विभिन्न आयोगों की रिपोर्टें जिसके अंतर्गत पूर्व विधि आयोगों, उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों के न्यायिक निर्णयों पर भी विचार किया और इस विषय से संबंधित सुसंगत कानूनों के विद्यमान उपबंधों का विश्लेषण किया।

विचार-विमर्श करने के पश्चात् आयोग ने ‘यातना’ की परिभाषा को इस प्रकार परिभाषित किया है, कि इसके अंतर्गत या तो जानबूझकर या स्वेच्छा से कोई क्षति पहुंचाना है, या यहां तक कि ऐसी कोई-शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक क्षति कारित करने का प्रयास भी है। इसके अतिरिक्त, आयोग ने सरकार को यह सिफारिश की है कि वह यातना के विरुद्ध कन्वेंशन, जो अधिनियमिती का लाजवाब विधान है, का अनुसमर्थन करने की संभावना पर विचार करे और इसके अधीन दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 और साक्ष्य अधिनियम, 1872 में पारिणामिक संशोधन करें। यातना के विभिन्न पहलुओं के विश्लेषण के आधार पर आयोग ने एक प्रारूप विधेयक तैयार किया है जिसका शीर्षक “यातना निवारण विधेयक, 2017” है, जो इस रिपोर्ट के साथ संलग्न है।

मुझे केन्द्रीय सरकार द्वारा विचार करने के लिए आयोग की 273वीं रिपोर्ट, जिसका शीर्षक “यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन” है का “विधान के माध्यम से कार्यान्वयन” अप्रेषित करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

सधन्यवाद

भवदीय

(डा. न्यायमूर्ति बी.एस. चौहान)

श्री रवि शंकर प्रसाद  
माननीय मंत्री, विधि और  
न्याय मंत्रालय, शास्त्री भवन  
नई दिल्ली

रिपोर्ट सं. 273

“यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा  
अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र  
कन्वेंशन’ का विधि के माध्यम से कार्यान्वयन”

विषय-वस्तु की सारणी

अध्याय	शीर्षक	पृष्ठ
1.	प्रस्तावना	1-8
2.	अन्तरराष्ट्रीय दृश्य विधान	9-30
3.	विभिन्न आयोगों द्वारा यातना से संबंधित विवादों की परीक्षा	31-38
4.	संवैधानिक/कानूनी उपबंध	39-46
5.	अभिरक्षा में हुई मृत्यु और हिंसा के संबंध में न्यायिक प्रतिक्रिया	47-65
6.	अभिरक्षा में दी गई यातना/मृत्यु के लिए प्रतिकर	66-75
7.	सिफारिशें	76-78
उपाबंध:	यातना निवारण विधेयक, 2017	79-88

## अध्याय- 1

### प्रस्तावना

#### क. पृष्ठभूमि

1.1 पूरे कालखंड में यातना के इतिहास से यह पता<sup>1</sup> चलता है कि विभिन्न समुदाओं द्वारा या तो उनके धार्मिक रिवाजों या उनकी दंड संहिता में इसका उपयोग होता रहा है। यातना देना एक प्रकार की क्रूरता है और एक ऐसी बर्बरता है जो आधुनिक सभ्यता को त्रस्त करती है। युद्ध में पकड़े गए सैनिकों को घृणा की दृष्टि से देखते हुए यातना देने को अनिवार्य रूप से स्वीकार किया जाता था। अक्सर पकड़े गए ऐसे सैनिकों की बलि ईश्वर को दी जाती थी। अभियुक्त व्यक्तियों के विचारण में अग्नि या जल, विष, मीजान और उबलता हुआ तेल डालकर दिव्यपरीक्षा की जाती थी। भू-राजस्व के संग्रहण में दक्षिणी भारतीय प्रान्तों के कर्मचारियों द्वारा अनुनडल के प्रयोग को निर्दिष्ट किया जा सकता है। प्रचलित पद्धतियों में से एक पद्धति थूड़ासेवरी के नाम से जानी जाती है जिसे अब पिटाई के नाम से जाना जाता है इसका प्रयोग कर-संग्राहक और अन्य कर्मचारियों द्वारा वसूली और कर्ज के भुगतान के लिए तथा आपराधिक मामलों में संस्वीकृति और साक्ष्य प्राप्त करने के लिए किया जाता था। अभियुक्त व्यक्तियों को दूध के साथ नमक मिलाकर तब तक जबरदस्ती पिलाया जाता था जब तक वे अतिसार के कारण मृत्यु के द्वार तक नहीं पहुंच जाते थे। एक ऐसी छोटी कोठरी में जहां बड़ी संख्या में लोगों को रखा जाता था वहां असहनीय प्यास, ताजा हवा का न होना और कोठरी में अनर्थकारी बदबू की वजह से लोगों को श्वासरोध के कारण मृत्यु स्वीकार करने के लिए मजबूर किया जाता था।

1.2 किसी व्यक्ति को सोने न देने के कारण उस व्यक्ति की सामान्य दिनचर्या और कार्यनिष्पादन को नुकसान पहुंचाता है जो कि मानसिक और शारीरिक यातना की कोटि में आता है क्योंकि इसका बहुत व्यापक नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।<sup>2</sup>

---

<sup>1</sup> जार्ज रायले स्काट “दि हिस्ट्री आफ टार्चर थ्रोआउट दि एजसे” , 1940 (टी वर्नर लोरी लि. लि. लंदन)

<sup>2</sup> रामलीला मैदान की घटना वाले मामलों में, 2012 (5) एस.सी.सी.1

1.3 “संस्वीकृति प्राप्त करने के लिए विचारण और यातना” इस संबंध में कौटल्य के अर्थशास्त्र में ब्यौरेवार विचार किया गया है<sup>3</sup>। इसका सुसंगत भाग निम्नलिखित है:

यातना (कर्म) के चार प्रकार प्रचलन में हैं:- छह दंड (शतदंड), सात प्रकार के कोड़े (कासा), दो प्रकार का ऊपर से लटकाना (ऊपरो निबंधहाऊ), और जल-ट्यूब (उड़ाकानालिका चा)। ऐसा व्यक्ति जिसने घोर अपराध कारित किया है, उसकी बेंत से पिटाई करने की नौ प्रकार की यातना की रीति:- प्रत्येक जंघा पर 12 बार मारना; पेड़ की छड़ी से 28 बार मारना (नकटामाला); हाथों की प्रत्येक हथेली पर और पैरों के प्रत्येक तलवे पर 32 बार मारना; हाथों के पोर पर दो बार मारना, हाथों को इस तरह जोड़ना जिससे कि वे बिच्छू की तरह प्रतीत हो, दो प्रकार से लटकाना, चेहरा नीचे की तरफ (उल्लामामबनचले); चावल का मांड पिलाने के बाद अभियुक्त की अंगुली की गांठों में से एक को जलाना; तेल पिलाने के पश्चात् एक दिन के लिए अभियुक्त के शरीर को गर्म करना; सर्दी में एक रात के लिए खुरदरी हरी घास पर लिटाना। ये 18 प्रकार की यातनाएं हैं.....प्रत्येक दिन नए प्रकार की यातना दी जा सकती थी।

जिन व्यक्तियों के बारे में यह विश्वास है कि उनकी दोषिता सत्य है तब उसे यातना दी जाएगी (अपतादोषम कर्म कर्यत)। किन्तु ऐसी महिलाओं को यातना नहीं दी जाएगी जिनका प्रसव के पश्चात् एक मास समाप्त नहीं हुआ है। महिला को विहित मानक की आधी यातना दी जाएगी।

1.4 अपराधियों के हाथों से समाज का संरक्षण करने की आवश्यकता है जिस पर मनु और इस युग के विधि बनाने वालों ने जोर दिया है।<sup>4</sup>

---

<sup>3</sup> आर शामाशास्त्री द्वारा अंग्रेजी भाषा में अनुदित; चेप्टर viii, बुक iv; पर उपलब्ध: [https://ia802703.us.archive.org/13/items/Arthashastra\\_English\\_Translation/Arthashastra\\_of\\_Chankya\\_-\\_English.pdf](https://ia802703.us.archive.org/13/items/Arthashastra_English_Translation/Arthashastra_of_Chankya_-_English.pdf); 23 अगस्त को अंतिम बार देखा गया

<sup>4</sup> खांडेकर, इन्द्रजीत, पवार, विश्वजीत और अन्य “टार्चर लिडिंग टू सुसाइड: एक मामला रिपोर्ट 31(2) जेआईएफएम 152

1.5 पुरानी ग्रीक और रोमन विधियों में यह विनिर्दिष्ट किया गया था कि केवल गुलाम को यातना दी जा सकती थी किन्तु बाद में राजद्रोह के मामलों में स्वाधीन-लोगों को भी यातना देना अनुज्ञात किया गया था। ए.डी. 240 में, रोमन विधि के अधीन गुलामों को यातना देने के अधिकार को समाप्त कर दिया गया। मध्य युग में “स्पेनिश धर्म न्यायाधिकरण” में केथोलिक चर्च की कार्यवाहियों में यातना को शामिल किया गया जिसका प्रयोग संस्वीकृति अभिप्राप्त करने के लिए किया जाता था।<sup>5</sup>

1.6 इतिहास से पता चला है कि विभिन्न ज्ञात योद्धाओं और सम्राटों को, युद्ध हारने के पश्चात्, यातना, जैसे कि अंगुष्ठभ्रमि, झेलनी पड़ी थी।<sup>6</sup>

1.7 मुस्लिम युग के दौरान, शरीयत विधि, ‘आंख के बदले आंख’, को लागू किया गया था। कई इस्लामी देशों में अभी भी इस्लामी दांडिक विधिशास्त्र का पालन किया जाता है। कुछ इस्लामी देशों के विधान में कतिपय बर्बर शारीरिक दंड, जैसे जनता के सामने कोड़े मारना, गैर कानूनी ढंग से वध करना, या अंग काटना, का उपबंध किया गया है। ब्रिटिशराज किसी भी तरह से, पुलिस अभिरक्षा में व्यक्तियों पर यातना कारित करने के लिए कुख्यात था। पुरुषों, महिलाओं और बालकों की पिटाई की जाती थी और उन्हें ऐसे अपराधों के संबंध में संस्वीकृति करने के लिए यातना दी जाती थी जो अपराध उन्होंने कारित ही नहीं किए थे। राजनैतिक कार्यकर्ताओं के साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार किया जाता था यदि उनसे वांछित जवाब नहीं मिलता था।

1.8 डी.के. बासु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य<sup>7</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया है कि: यातना को संविधान में या अन्य दंड विधियों में परिभाषित नहीं किया है। “किसी मानव को एक और अन्य मानव द्वारा दी जा रही यातना आवश्यक रूप से “किसी बलवान” द्वारा ‘किसी कमजोर व्यक्ति’ को पीड़ा पहुंचा कर अपनी इच्छा को अधिरोपित करने का एक लिखत है। आज यातना शब्द मानवीय सभ्यता के दूषित पक्ष का पर्यायवाची हो गया है”। न्यायालय ने एडरीना पी. बारटो द्वारा यातना की परिभाषा को उद्धृत किया है जो कि निम्नलिखित है:

<sup>5</sup> कर्टिस मार्टिन, “आर्टिकल 3 आफ दि ह्यूमन राइट ऐक्ट 1988 (मानव अधिकार अधिनियम का अनुच्छेद 3): नैदानिक व्यवसाय के लिए विवक्षा”<sup>14</sup> एपीटी 389 (2008)

<sup>6</sup> <http://listovative.com/top-10-historys-worst-torture-methods/>

<sup>7</sup> ए.आई.आर.1997 एस.सी.एस.सी.610

“यातना आत्मा को पहुंचा एक ऐसा घाव है जो इतना दर्दनाक है जिसे लगभग आप स्पर्श कर सकते हैं, किन्तु यह ऐसा अस्पृश्य भी है कि यह किसी भी प्रकार से भर नहीं सकता है। यातना एक ऐसी पीड़ा है जो आपकी छाती को दबोचती है, बर्फ की तरह ठंडा, पत्थर की तरह भारी, निद्रा की तरह पक्षाघात और नर्क की तरह अंधकारमय है। यातना विषाद और भय और रोष और नफरत है। यह मारने और नष्ट करने की एक ऐसी इच्छा है जिसमें आप भी सम्मिलित हैं।”

1.9 एलिजेबथ के समय में विधिक रूप से “यातना वारंट” जारी किए जाते थे<sup>8</sup>। वर्ष 1640<sup>9</sup> में अंतिम बार इंग्लैंड में यातना के प्रयोग द्वारा परीक्षा की गई थी। ट्रीजन ऐक्ट 1709 द्वारा न्यायिक यातना को समाप्त किया गया था जिसे किसी यूरोपियन राज्य में यातना की प्रथम औपचारिक समाप्ति माना गया था।

1.10 संयुक्त राष्ट्र केन्द्रीय आसूचना अभिकरण (सी.आई.ए.) द्वारा गुप्त यातना और यातना प्रशिक्षण के इतिहास के पुनर्विलोकन में एल्फ्रेड मकोय ने वर्ष, 1950 में सी.आई.ए. द्वारा वित्त पोषित प्रयोगों का वर्णन किया है, इन प्रयोगों में ‘स्पर्श किए बिना’ कैसे मानसिक रोगियों और कैदियों पर जो प्रयोग किए जाते थे मुख्य रूप से वह संवेदक वाचाघात था।<sup>10</sup>

## ख. आयोग को निर्देश

1.11 भारत ने, यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध कन्वेंशन [जिसे तारीख 10 दिसंबर, 1984 को संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा अंगीकृत किया गया (संकल्प सं 39/46)] (जो यातना के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन, संक्षेप में “सी.ए.टी.” के नाम से ज्ञात है), पर तारीख 14 अक्टूबर, 1997 को हस्ताक्षर किए थे तथापि, अभी तक भारत ने इसका अनुसमर्थन नहीं किया है।

<sup>8</sup> जान एच लेंगबीयन: टार्चर एंड लॉ आफ प्रूफ, यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस

<sup>9</sup> देखें ए और अन्य (अपीलार्थी) बनाम सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर दि हाम डिपार्टमेंट [2004]: पैरा 412

<sup>10</sup> एल्फ्रेड मकोय: ए क्वेशन आफ टार्चर: सी.आई.ए. इन्टरोगेशन फ्राम दि कोल्ड वार टू दि वार आन टेरर (न्यूयार्क 2006) यूनिवर्सिटी ऑफ विसकोन्सिन-मेडीसन न्यूज।

भारत ने इस कन्वेंशन में अन्तर्दिष्ट कतिपय उपबंधों, जैसे कि सी.ए.टी. द्वारा जांच (अनु.20), राज्य की शिकायतें (अनु.21) और व्यक्तिगत शिकायतें (अनु.22), के विरुद्ध अपने संदेह अभिव्यक्त किए हैं।

(i) कतिपय संगठनों के विचार

1.12 विधिवेत्ता, अन्तरराष्ट्रीय आयोग और अन्य संगठनों ने भारत से यह आग्रह किया है कि वह इस कन्वेंशन द्वारा सुझाए गए सुधारों की अंगीकृत करे। सार्वभौमिक सामयिक पुनर्विलोकन एक ऐसी संवाद प्रक्रिया है जिस प्रत्येक चार वर्ष के पश्चात् किया जाता है। इस ढांचे के अधीन संयुक्त राष्ट्र सदस्य राज्यों के मानव अधिकार अभिलेख का पुनर्विलोकन करता है। मानव अधिकारों के सार्वभौमिक सामयिक पुनर्विलोकन के दौरान कुछ राज्य पक्षकारों द्वारा भारत से यातना कन्वेंशन का अनुसमर्थन करने का भी अनुरोध किया गया है।

1.13 भारत में मानव अधिकारों पर कार्यकारी समूह ने यातना के विरुद्ध सरकार द्वारा हस्तक्षेप करने की मांग की है।

(ii) सरकार का पक्ष

1.14 आरंभ में केन्द्रीय सरकार ने यह दलील दी कि भारतीय दंड संहिता, 1860 के अधीन यातना एक दंडनीय अपराध है। इसके बाद यह विनिश्चित किया गया कि इस बाबत एक विधान अधिनियमित किया जाए और कन्वेंशन के उपबंधों को प्रभावी करने के लिए लोकसभा में यातना निवारण विधेयक, 2010 पुरःस्थापित किया गया। तारीख 6 मई, 2010 को लोकसभा द्वारा इस विधेयक को पारित किया गया। राज्यसभा ने इस विधेयक को स्थायी समिति को निर्देशित कर दिया जिसने विधेयक में प्रस्तावित संशोधन करके इसे यातना कन्वेंशन का और अनुगामी बना दिया। तथापि, 15वीं लोकसभा के विघटन के साथ यह विधेयक व्यपगत हो गया। भारत सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम, 1958 (ए.एफ.एस.पी.ए.) को निरसित करने के लिए सहमत नहीं है।



1.15 डा. अश्विनी कुमार द्वारा फाइल की गई सिविल रिट याचिका<sup>11</sup> में उच्चतम न्यायालय के समक्ष याची ने यह दलील दी कि “इस कारण विदेशी राष्ट्रों से अपराधियों के प्रत्यर्पण में भारत को समस्याओं का सामना करना पड़ता है (हमारे पास यातना के विरुद्ध कोई विधि नहीं है)। हमारे अपने राष्ट्रीय हित में ऐसी विधि आवश्यक है”। याची ने सरकार को यह निदेश करने की ईप्सा की कि कारागार सहवासियों को यातना, क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार करने से निवारित करने के लिए सी.ए.टी. के निबन्धनों और उचित मार्गदर्शन सिद्धांतों के अनुसार एक विधिक ढांचा तैयार करें।

1.16 वर्ष 2012 में संयुक्त राष्ट्र विशेष रिपोर्टर ने संयुक्त राष्ट्र महासभा में मृत्यु दंड और यातना प्रतिषेध पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट में यह उल्लेख किया गया है कि यद्यपि मृत्यु दंड, यातना और क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार प्रतिषेध का अतिक्रमण नहीं करता है किन्तु इससे संबंधित कतिपय पहलू जैसे कि मृत्युदंड देने के कतिपय तरीके और मृत्युदंड की पंक्ति में रहने की घटना इस कन्वेंशन के अधीन सम्मिलित की जा सकती है। तथापि, निश्चित रूप से यह उल्लेखनीय है कि यातना और मृत्युदंड पर ऐसा मत केवल ऐसे देशों को लागू होता है जो विधिपूर्ण अनुशास्ति के अधीन, बर्बरता से मृत्युदंड (उदाहरणार्थ पत्थर मार मार कर मृत्यु कारित करना) देते हैं स्पष्ट रूप से यह यातना के लक्षण हैं।

1.17 अभ्यर्पण के अनुरोधों को नामंजूर करने के आधारों के रूप में अक्सर मृत्युदंड और यातना को उद्धृत किया जाता है मानव अधिकारों का इससे ही संबंध है। ऐसे देश जिन्होंने मृत्युदंड को उत्सादित कर दिया है उन्हें अक्सर इस राजनयिक आश्वासन की आवश्यकता होती है अभ्यर्पित किए गए व्यक्ति के अधिकारों को भंग नहीं किया जाएगा। यदि ऐसा प्रतीत होता है कि जिस व्यक्ति का अभ्यर्पण किया गया है उसे मृत्युदंड दिया जाएगा या यह विश्वास करने के आधार है कि उस व्यक्ति को यातना या क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय विधि लिखतों, जैसे कि आई.सी.सी.पी.आर. और यू.एन.डी.एच.आर. द्वारा प्रत्याभूत अधिकारों

---

<sup>11</sup> 2016 की रिट याचिका (सिविल) सं. 738; सितंबर, 2016 में उच्चतम न्यायालय ने लोकहित मुकदमें में केन्द्रीय सरकार को सूचना जारी की थी।

में से किसी अधिकार से वंचित किया जाएगा। यह इस कन्वेंशन के उद्देश्यों के लिए हरगिज सहायक नहीं होगा, जब कोई राज्य पक्षकार किसी संदिग्ध या फरार व्यक्ति को यह जानते हुए उसे किसी एक और अन्य राज्य पक्षकार को अध्यार्पित करती है कि जहां वह यातना दिए जाने के वास्तविक खतरे में होगा यह इस कन्वेंशन की विचारधारा और आशय के विपरीत है इससे वह व्यक्ति यातना या क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार के वास्तविक जोखिम से अरक्षित हो जाएगा। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि मृत्युदंड के लिए लंबी अवधि तक अंतःवासी द्वारा इंतजार करना और “.....मृत्युदंड के निष्पादन के लिए इंतजार करने की तीव्र व्यथा सदैव बनी रहती है.....”<sup>12</sup>।

1.18 [भारतीय] प्रत्यर्पण अधिनियम, 1962 की धारा 34ग निम्नलिखित है:

“मृत्युदंड के स्थान पर आजीवन कारावास के लिए उपबंध:- तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी फरार अपराधी ने भारत में मृत्युदंड का कोई प्रत्यर्पण अपराध कारित किया है, उसे किसी विदेशी राज्य द्वारा केन्द्रीय सरकार के अनुरोध पर अभ्यर्पित या लौटा दिया जाता है कि उस विदेशी राज्य की विधियों में ऐसे किसी अपराध के लिए मृत्युदंड का उपबंध नहीं किया गया है इसलिए ऐसा फरार अपराधी उस अपराध के लिए केवल आजीवन कारावास के दंड का दायी होगा।”

1.19 यातना प्रतिषेध रूढ़िगत अन्तरराष्ट्रीय विधि का एक भाग है और अनिवार्य प्रतिमान का भी भाग है। यातना कन्वेंशन में प्रत्यर्पण प्रतिषेध को सम्मिलित करने से अधिक राज्यों को यातना के कृत्यों के लिए पूरे विश्व में जवाबदेही सुनिश्चित करने का आदेश दिया जा सकता है। कन्वेंशन ने कोई अन्तरराष्ट्रीय अपराध, जो पहले विद्यमान नहीं था, सृजित नहीं किया है किन्तु एक अन्तरराष्ट्रीय प्रणाली उपबंधित की

---

<sup>12</sup> सोरिंग बनाम यू के अपलीकेशन (07/07/1989) वाले मामले में मानवीय अधिकारों के यूरोपियन न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यू.के. से वर्जीनिया में, संयुक्त राष्ट्र में से एक राज्य, में किसी व्यक्ति का प्रत्यर्पण किया जाता है तो मृत्युदंड अधिरोपित किया जाता है जिससे यातना कन्वेंशन के अनुच्छेद 3 का अतिक्रमण होता है।

है जिसके अधीन अत्याचारी एक ऐसा अन्तरराष्ट्रीय अपराधी है जिसे कोई सुरक्षित शरण स्थान नहीं मिल सकता।<sup>13</sup>

1.20 शत्रुघन चौहान बनाम भारत संघ<sup>14</sup> वाले मामले में उच्चतम ने मृत्युदंड के निष्पादन में यातना की व्यापकता के संबंध में विचार-विमर्श करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया है:

“मृत्युदंड के निष्पादन में अनुचित, अत्यधिक और अयुक्तियुक्त विलंब को निश्चित रूप से यातना माना जा सकता है वास्तव में इससे अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण होता और दंडादेश का लघूकरण का आधार हो जाता है। तथापि, विलंब अर्थात् चाहे यह अनुचित या अयुक्तियुक्त हो इसका मूल्यांकन अलग अलग मामलों के तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए और इस बाबत व्यापक मार्गदर्शक सिद्धांत विरचित नहीं किए जा सकते हैं।”

1.21 न्यायालय ने, महा-सालिसिटर के इस कथन की कि भारत का विधि आयोग इस विवाद्यक की परीक्षा कर रहा है, के उत्तर में यह मत व्यक्त किया कि “विधि आयोग के समक्ष कई विषय लंबित हैं। इस विषय के संबंध में विचार किया जाना चाहिए और इस पर अत्यधिक शीघ्रता से विचार करने की आवश्यकता है।”

1.22 तदनुसार, केन्द्रीय सरकार ने तारीख 8 जुलाई, 2017 के अपने पत्र द्वारा विधि आयोग को यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन के अनुसमर्थन के विवाद्यक की परीक्षा करने के लिए और इस विषय पर रिपोर्ट प्रस्तुत करने का अनुरोध किया।

---

<sup>13</sup> बार्टले एंड दि कमिशनर ऑफ पुलिस फॉर दि मेट्रोपोलिस एंड अदर, एक्स पारटे पिनोचेट; आर.वी. इवन्स एंड अनदर एंड दि कमिशनर आफ पुलिस फॉर दि मेट्रोपोलिस एंड अदर, एक्स पारटे पिनोचेट; आर.वी. [1999] यूकेएचएल 17 (24 मार्च, 1999)।

<sup>14</sup> (2014) 3 एस.एस.सी.।

## अध्याय- 2

### अन्तरराष्ट्रीय दृश्य विधान

#### क. मानव अधिकारों की लिखतें

2.1 यातना से मुक्ति का अधिकार कई मानव अधिकारों की लिखत में उपबंधित हैं जिसमें ऐसे सरकारी अभिकर्ताओं जो किसी विनिर्दिष्ट प्रयोजन, जैसे कि जानकारी प्राप्त करना, के लिए कार्य कर रहे हैं उनके अनुमोदन या उपमति के साथ जानबूझकर कठोर शारीरिक या मनोवैज्ञानिक कष्ट पहुंचाकर दमन किए जाने वाले सभी व्यक्तियों के संरक्षण के लिए उपबंध किए गए हैं। यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार के प्रतिषेध के उपबंध निम्नलिखित प्रादेशिक तथा सार्वभौमिक मानवाधिकार की लिखतों में किया गया है।<sup>15</sup>

- (i) यूनिवर्सल डिक्लरेशन ऑफ ह्यूमन राइट्स, 1948 (आर्ट. 5)
- (ii) अमेरिकन डिक्लरेशन ऑफ दि राइट्स एंड इयूटी ऑफ मैन, 1948 (आर्ट. 27)
- (iii) यूरोपियन कन्वेंशन फॉर दि प्रोटेक्शन ऑफ ह्यूमन राइट्स एंड फंडामेंटल फ्रीडमस, 1950 (आर्ट. 3)
- (iv) यूनाइटेड नेशन्स कन्वेंशन रिलेटिंग टू दि स्टेटस ऑफ रिफ्यूजीस, 1951
- (v) यूनाइटेड नेशन्स स्टैंडर्ड मिनिमम रूल्स फॉर दि ट्रीटमेंट ऑफ प्रिज़नरस, 1955 (आर्ट. 31)
- (vi) ड्राफ्ट प्रिंसिपल्स ऑन फ्रीडम फ्रॉम आरबिटरेरी अरेस्ट, डिटेंशन एंड एक्साइल (1963)
- (vii) इंटरनेशनल कन्वेंशन ऑन दि एलिमिनेशन ऑफ आल फॉर्म ऑफ रेसियल डिस्क्रिमिनेशन, 1965 (आईसीईआरडी)

---

<sup>15</sup> इंटरनेशनल जस्टिस रिसोर्स सेन्टर (आई जे आर सी)

- (viii) इंटरनेशनल कोवेनेंट ऑन सिविल एंड पॉलिटिकल राइट्स, 1966  
(आर्ट. 4, 7 एंड 10)
- (ix) अमेरिकन कन्वेंशन ऑन ह्यूमन राइट्स, 1969 (आर्ट. 5)
- (x) डिक्लेरेशन ऑन दि प्रोटेक्शन ऑफ़ आल पर्सन्स फ्रॉम बीइंग सब्जेक्टेड टू टॉर्चर एंड अदर क्रूल इनह्यूमन ऑर डिग्रेडिंग ट्रीटमेंट ऑर पनिश्मेंट (1975)
- (xi) ऑप्शनल प्रोटोकॉल टू दि इंटरनेशनल कोवेनेंट ऑन सिविल एंड पॉलिटिकल राइट्स (1976)
- (xii) कोड ऑफ कंडक्ट फॉर लॉ एनफॉर्समेंट ऑफिसिल्स (1979) आर्टिकल 2-3 एंड 5-6
- (xiii) कन्वेंशन ऑन दि एलिमिनेशन ऑफ ऑल फॉर्मस ऑफ डिस्क्रिमिनेशन अगैन्स्ट वूमन 1979 (सीईडीएडब्ल्यू)
- (xiv) अफ्रीकन चैप्टर ऑन ह्यूमन एंड पीपल्स राइट्स, 1981 (आर्ट. 5)
- (xv) कन्वेंशन अगैन्स्ट टॉर्चर एंड अदर क्रूल, इनह्यूमन ऑर डिग्रेडिंग ट्रीटमेंट ऑर पनिश्मेंट (सीएटी), 1984
- (xvi) यू.एन. डिक्लेरेशन ऑन बेसिक प्रिंसिपल्स ऑफ जस्टिस फॉर विक्टिम्स ऑफ क्राइम एंड अब्यूस ऑफ पावर 1985
- (xvii) इंटर-अमेरिकन कन्वेंशन टू प्रिवेन्ट एंड पनिश टॉर्चर, 1985
- (xviii) यूरोपियन कन्रेंशन फॉर दि प्रीवेंशन ऑफ टॉर्चर एंड इनह्यूमन ऑर डिग्रेडिंग ट्रीटमेंट, 1987
- (xix) कन्वेंशन ऑन दि राइट्स ऑफ दि चाइल्ड, 1989 (आर्ट.37)
- (xx) यूरोपियन कन्वेंशन फॉर दि प्रीवेंशन ऑफ टॉर्चर एंड अदर क्रूल, इनह्यूमन ऑर डिग्रेडिंग ट्रीटमेंट ऑर पनिश्मेंट, 1989
- (xxi) कैरो डिक्लेरेशन ऑन ह्यूमन राइट्स इन इस्लाम, 1990 (आर्ट. 19-20)
- (xxii) चार्टर ऑफ पेरिस फॉर ए न्यू यूरोप, 1990
- (xxiii) कन्वेंशन ऑन दि प्रोटेक्शन ऑफ दि राइट्स ऑफ माइग्रेन्ट वर्कर्स एंड मेंबर्स ऑफ दि देयर फैमिलीस, 1990 (आर्ट. 10)

(xxiv) इंटरनेशनल कन्वेंशन ऑन दि प्रोटेक्शन ऑफ दि राइट्स ऑफ ऑल पर्सन्स अगैन्स्ट एन्फॉर्स्ड डिसपीरन्स 1992 (सीपीएईडी)

(xxv) अरब चार्टर ऑन ह्यूमन राइट्स, 1994 (आर्ट. 8)

2.2 मानव अधिकारों पर यूरोपियन कन्वेंशन के अनुच्छेद 3 में यह उपबंध किया गया है कि “कोई भी व्यक्ति यातना या अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड के अधीन नहीं होगा”। इस अधिकार पर कोई अपवाद या सीमाएं नहीं हैं। यह उपबंध सामान्यता न केवल यातना को लागू होता है अपितु पुलिस अभिरक्षा में कठोर हिंसा और निरोध में खराब दशाओं के मामलों में भी लागू होता है। यह एक आत्यंतिक अधिकार है और किसी परिस्थिति में किसी व्यक्ति को यातना देने को कभी न्यायोचित्य नहीं माना जा सकता है।

2.3 दि इंटरनेशनल कावेन्ट आन सिविल एंड पालिटिकल राइट्स, (1966) (आईसीसीपीआर) [सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा (1966) (आईसीसीपीआर)]- एक बहुपक्षीय संधि- यह एक मुख्य अन्तरराष्ट्रीय मानवाधिकारों की संधि है, जिसमें सिविल और राजनैतिक अधिकारों के लिए विभिन्न प्रकार के संरक्षणों का उपबंध किया गया है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा, 1948 और आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा को एक साथ मिलाकर आईसीसीपीआर को मानवाधिकारों का अन्तरराष्ट्रीय विधेयक माना जाता है। जेनेवा प्रसंविदाएं, सिविलियन, युद्धवंदियों और सैनिकों, जिन्हें अन्यथा युद्ध के अयोग्य हो गए मान लिया जाता है और युद्ध के दौरान<sup>16</sup> घायल और बीमार सैनिकों पर, संधियों की एक श्रृंखला है।

2.4 सार्वभौमिक मान्यतप्राप्त मानवाधिकारों में से मानवाधिकार, यातना पर प्रतिषेध है जिसने अनिवार्य प्रतिमान या साधारण अन्तरराष्ट्रीय विधि के अवश्य पालनीय विधान की प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है और इससे सभी राज्य इस बाध्यता के

---

<sup>16</sup>जेनेवा प्रसंविदाएं, [https://www.law.cornell.edu/wex/geneva\\_conventions](https://www.law.cornell.edu/wex/geneva_conventions) (visited on 26-10-2017) पर उपलब्ध है।

अधीन हो गए हैं कि जो कोई यातना देगा उसके विरुद्ध कार्रवाई की जाएगी। इस प्रकार इस प्रतिषेध को ऐसे राज्यों के विरुद्ध भी प्रवृत्त किया जा सकता है जिन्होंने सुसंगत संधियों का अनुसमर्थन नहीं किया है और यहां तक कि युद्ध के समय या आपातकाल में प्रतिषेध अप्रतिष्ठा के अधीन नहीं है। अवश्य पालनीय विधान के अनिवार्य अन्तरराष्ट्रीय प्रतिमान को इतना मौलिक माना जाता है कि इससे विचलन होने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है। संधियों की विधि पर अनिवार्य प्रतिमान का स्रोत वियेना कन्वेंशन के अनुच्छेद 53 है जिसका राष्ट्रीय और रूढ़िगत विधि<sup>17</sup> पर बहुत गहरा असर है।

## ख. यातना के विरुद्ध कन्वेंशन (सीएटी)

2.5 यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध कन्वेंशन (सीएटी) एक अन्तरराष्ट्रीय मानवाधिकारों की संधि है, जो संयुक्त राष्ट्र के संरक्षणाधीन है और इसका लक्ष्य, पूरे संसार में यातना और क्रूरता के अन्य कृत्यों, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंडादेश, को प्रतिषिद्ध करना है। “कन्वेंशन अपनी निर्देशात्मक प्रणाली के अधीन, भागतः ऐसे कृत्यों के दोषी व्यक्तियों को दंड से मुक्ति का अधिकार मिला हुआ है और जिन्हें राज्य पक्षकार की अधिकारिता के अधीन राज्यक्षेत्र में उनकी उपस्थिति के एकमात्र आधार पर अभिकथित यातना देने वाले व्यक्ति को गिरफ्तार करने के लिए प्राधिकृत किया गया है उनका सामना करते हुए और मानवता के विरुद्ध अपराध के रूप में यातना के व्यापक और सुनियोजित उपयोग को भी परिभाषित करते हुए, पीड़ित का संरक्षण करती है” .....। यातना के विरुद्ध कन्वेंशन के आनुकल्पिक प्रोटोकाल द्वारा यातना प्रतिषेध पर (एस.पी.टी.) उपसमिति स्थापित की गई थी जिसका कार्य राष्ट्रीय निवारक अभिकरणों के साथ मिलकर प्रोटोकाल के राज्य पक्षकारों में निरोध के सभी स्थानों का निरीक्षण करना था। संबंधित राज्य पक्षकारों के लिए कन्वेंशन के प्रभावी होने के पश्चात् एक वर्ष के भीतर यातना प्रतिषेध और अनुचित व्यवहार (जो राष्ट्रीय प्रतिषेध प्रक्रिया के

<sup>17</sup>वेट, इरिका, डे “यातना पर प्रतिषेध, अवश्य पालनीय विधान के अनिवार्य अन्तरराष्ट्रीय प्रतिमान के रूप में है और इसकी विवक्षा राष्ट्रीय और रूढ़िगत विधि के लिए है” 15 ईजेआईएल 97-121 (2004)

नाम से ज्ञात है) के लिए प्रोटोकाल यह अपेक्षा करता है कि राज्य पक्षकार निरीक्षण निकाय या निकायों को स्थापित करें।<sup>18</sup> यातना से मुक्ति के अधिकार में निम्नलिखित अधिकार और बाध्यताएं शामिल हैं:<sup>19</sup>

- (1) व्यष्टियों के अधिकार का संरक्षण राज्य द्वारा इसके अभिकर्ताओं से किया जाएगा;
- (2) राज्य का यह कर्तव्य होगा कि यातनाकर्ता का अभियोजन करें; और
- (3) व्यष्टियों का, और एक अन्य राज्य जिसमें उन्हें यातना दिए जाने का जोखिम है, न लौटाए जाने या अभ्यर्पित न करना का अधिकार।

#### (i) राज्यों की बाध्यताएं

2.6 राज्य जो इस कन्वेंशन के पक्षकार हैं उनसे निम्नलिखित कार्रवाई अपेक्षित हैं:

- यातना प्रतिषिद्ध करने के संबंध में कार्रवाई करें और घरेलू विधियों और विनियमों के अधिनियमन द्वारा ऐसे कृत्यों को अपराध माना जाए और अभिकथित पीड़ित और अभियुक्त के मानवाधिकारों के आदर के संबंध में उपबंध किए जाए।
- यातना को गैर कानूनी घोषित किया जाए और “उच्चतर आदेश या आपवादिक परिस्थितियों को यातना कारित करने के लिए एक बहाने के रूप में प्रयोग करने को अनुज्ञात नहीं किया जाएगा।

#### (ii) अधिकारिता

2.7 सार्वभौमिक अधिकारिता का सिद्धान्त, अधिकारिता के प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए लागू होगा, जो कि केवल राज्यक्षेत्र पर या अपराधी की राष्ट्रीयता पर

---

<sup>18</sup> विवश होकर भाग जाना, यातना और मनमाना निरोध, <http://www.diplomatie.gouv.fr/en/french-foreign-policy/human-rights/enforced-disappearance-torture-and-arbitrary-detention/> (visited on 26-10-2017). पर उपलब्ध है।

<sup>19</sup> यातना, <http://www.ijrcenter.org/thematic-research-guides/torture/> (visited on 26-10-2017). पर उपलब्ध है।



आधारित नहीं होगा अपितु राज्यों के बाहर कारित यातना के कृत्यों पर भी और यहां तक कि ऐसे व्यक्तियों द्वारा जो उनके नागरिक नहीं हैं पर भी लागू होगा। इस सिद्धांत को वायुयान के अपहरण और अन्य आतंकवादी क्रियाकलापों के विरुद्ध कन्वेंशनों में पहले ही स्वीकार किया जा चुका है जिसे इस कन्वेंशन<sup>20</sup> के अनुच्छेद 5(2) के अधीन स्वीकार और उल्लिखित किया गया है।

### (iii) राज्य पक्षकार का वचनबंध

2.8 सी.ए.टी. के अधिकतर उपबंधों में राज्य पक्षकारों की बाध्यताओं के संबंध में कार्रवाई की गई है। इन बाध्यताओं का सारांश निम्नलिखित है:<sup>21</sup>

(i) प्रत्येक राज्य पक्षकार, यातना के कृत्यों को निवारित करने के लिए, प्रभावी विधायी, प्रशासनिक, न्यायिक और अन्य अध्यापय करेगा। यातना के विरुद्ध प्रतिषेध आत्यंतिक होगा और युद्ध की दशा में और अन्य आपवादिक परिस्थितियों में यथावत बना रहेगा (अनुच्छेद 2);

(ii) राज्य पक्षकार किसी व्यक्ति को ऐसे राज्य में निष्कासित या अभ्यर्पित नहीं करेगा जहां यह विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं कि उसे यातना देने का खतरा है (अनुच्छेद 3);

(iii) प्रत्येक राज्य पक्षकार यह सुनिश्चित करेगा कि उसकी विधिक प्रणाली के भीतर यातना के कृत्य गंभीर दांडिक अपराध हैं (अनुच्छेद 4);

(iv) प्रत्येक राज्य पक्षकार, कतिपय शर्तों के आधार पर यातना के अपराध के संदिग्ध व्यक्ति को अभिरक्षा में लेगा और तथ्यों की आरंभिक जांच करेगा (अनुच्छेद 6);

(v) प्रत्येक राज्य पक्षकार यातना के अपराध के संदिग्ध व्यक्ति का या तो अभ्यर्पण करेगा या अभियोजन के लिए अपने स्वयं के अभियोजन प्राधिकारियों को मामला प्रस्तुत करेगा (अनुच्छेद 7);

<sup>20</sup> यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंडादेश के विरुद्ध कन्वेंशन-  
<http://legal.un.org/avl/ha/catcidtp/catcidtp.html> (visited on 26-10-2017) पर उपलब्ध है

<sup>21</sup> यथोक्त

(vi) प्रत्येक राज्य पक्षकार यह सुनिश्चित करेगा कि यातना के विरुद्ध प्रतिषेध की बाबत शिक्षा और जानकारी को पूर्ण रूप से विधि प्रवर्तन कार्मिकों, सिविल या सैन्य, चिकित्सा कार्मिकों, लोक कर्मचारियों के प्रशिक्षण में सम्मिलित किया गया है (अनुच्छेद 10);

(vii) प्रत्येक राज्य पक्षकार यह सुनिश्चित करेगा कि, जब यह विश्वास करने का युक्तियुक्त कारण हो कि कोई यातना का कृत्य कारित किया गया है तब इसके प्राधिकारियों ने अन्वेषण किया है (अनुच्छेद 12);

(viii) प्रत्येक राज्य पक्षकार यह सुनिश्चित करेगा कि किसी व्यक्ति जिसने यह अभिकथन किया हो उसे यातना दी गई है तब उसके मामले की परीक्षा सक्षम प्राधिकारियों द्वारा की जाएगी (अनुच्छेद 13);

(ix) प्रत्येक राज्य पक्षकार यह सुनिश्चित करेगा कि यातना के पीड़ित के पास उचित पर्याप्त प्रतिकर का प्रवर्तनीय अधिकार है (अनुच्छेद 14)।

#### **(iv) यातना और क्रूर व्यवहार का दस्तावेजीकरण**

2.9 प्रभावी अन्वेषण और यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंडादेश पर मैनुअल (इस्टानबुल प्रोटोकाल) में, यातना के पीड़ितों की पहचान करने और दुर्यवहार के दस्तावेजीकरण रिपोर्ट करने के लिए, साधारण स्वीकार्य मानक अन्तर्विष्ट हैं।

#### **(v) प्रवर्तन**

2.10 यातना, क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंडादेश पर प्रतिषेध को मानव अधिकार संधि निकायों, जिसके अन्तर्गत मानव अधिकार समिति, यातना के विरुद्ध समिति और यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंड के निवारण पर उप-समिति भी हैं, के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र पद्धति में कार्यान्वित किया गया है। यातना के विरुद्ध समिति (समिति) ऐसे मानव अधिकार विशेषज्ञों का एक निकाय है जो राज्य पक्षकारों द्वारा कन्वेंशन के कार्यान्वयन की निगरानी करती है। यह समिति आठ संयुक्त राष्ट्र संबद्ध मानव

अधिकार निकायों में से एक है। कन्वेंशन के अधीन सभी राज्य पक्षकार अधिकारों को कैसे कार्यान्वित किया जा रहा है इस संबंध में समिति को नियमित रिपोर्टें प्रस्तुत करने के लिए आबद्ध हैं। यातना के विरुद्ध समिति ने भी सी.ए.टी. के अनुच्छेद 22 के अधीन प्राप्त व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार की परीक्षा करने के लिए कार्यकारी समूह स्थापित किया है। यह कार्यकारी समूह पत्र-व्यवहार की ग्राहता और गुणागुण की परीक्षा करता है और समिति<sup>22</sup> को सिफारिशें करता है।

2.11 इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार परिषद विशेष प्रक्रिया द्वारा यातना के अभिकथन का अन्वेषण कर सकती है और उस पर रिपोर्ट दे सकती है। उदाहरणार्थ, यातना या अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंडादेश पर विशेष रिपोर्टर सभी संयुक्त राष्ट्र सदस्य राज्यों में यातना से संबंधित प्रश्नों की परीक्षा करने के लिए प्राधिकृत है। ऐसा त्वरित अपील, राष्ट्रों के दौरे और रिपोर्ट प्रस्तुत करके किया जा सकता है।

2.12 प्रवर्तन, क्षेत्रीय मानव अधिकार अधिकरणों, जिसके अन्तर्गत मानव अधिकार के यूरोपियन न्यायालय, मानवाधिकार के अंतर-अमेरिकन न्यायालय, मानवाधिकार पर अन्तर-अमेरिकन आयोग, मानव और जनता के अधिकारों पर अफ्रीकन आयोग तथा मानव और जनता के अधिकारों का अफ्रीकन न्यायालय भी है, के माध्यम से सुनिश्चित किया जा सकता है।

## ग. अन्तरराष्ट्रीय मानवीय विधि

2.13 जेनेवा कन्वेंशन<sup>23</sup> के अधीन यातना पहुंचाना मुख्य अन्तरराष्ट्रीय विधि का एक “घोर अतिक्रमण है विशिष्ट रूप से अनुच्छेद 3 का जिसे सशस्त्र संघर्ष के प्रभाव को सीमित करने के लिए उपबंधित किया गया है। जेनेवा कन्वेंशन के अधीन राज्य ऐसा आवश्यक विधान अधिनियमित करने के लिए बाध्य हैं जिसमें ऐसे कृत्यों को कारित करने वाले व्यक्तियों या ऐसे कृत्यों को कारित करने का आदेश देने वाले व्यक्तियों के

---

<sup>22</sup>ऊपर टिप्पण 20

<sup>23</sup>युद्धबंदियों के साथ व्यवहार से संबंधित, तीसरा कन्वेंशन, जेनेवा, 12 अगस्त, 1949

विरुद्ध प्रभावी दांडिक शास्तिक का उपबंध किया गया हो और ऐसे अभिकथित व्यक्तियों की तलाश करने के लिए बाध्य हैं जिन्होंने ऐसा घोर अतिक्रमण किया है या करने का आदेश किया है। ऐसे व्यक्तियों को जिनकी राष्ट्रिकता कुछ भी हो, अपने स्वयं के न्यायालयों के समक्ष, यदि ऐसे व्यक्तियों का अभ्यर्पण किसी एक अन्य राज्य पक्षकार को नहीं किया गया है, प्रस्तुत करेगा। यह कन्वेंशन यातना से सिविलियन और सेना के कार्मिकों, दोनों को यातना से संरक्षित करता है। रेड क्रॉस की अन्तरराष्ट्रीय समिति (आई.सी.आर.सी) ने अन्तरराष्ट्रीय मानवीय विधि का राष्ट्रीय प्रवर्तन पर जानकारी की एक किट तैयार की है।

#### घ. अन्तरराष्ट्रीय दांडिक विधि

2.14 अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन यातना को “मानवता के विरुद्ध” या “युद्ध अपराध” गठित किया गया है, जैसा कि अन्तरराष्ट्रीय दांडिक न्यायालय के रोम कानून (अनुच्छेद 7 और 8) में विनिर्दिष्ट किया गया है। इस प्रकार यातना पहुंचाने के संबंध में अन्वेषण किया जा सकता है और अन्तरराष्ट्रीय दांडिक न्यायालय द्वारा, अपनी अधिकारिता की सीमाओं के अधीन रहते हुए, अभियोजित किया जा सकता है।

2.15 यातना पर प्रतिषेध के संबंध में सरकारों से भी यह अपेक्षित है कि वे इसके निवारण के अध्येताय करे और यातना के लिए दंड दे तथा कई राज्यों ने अपनी राष्ट्रीय विधि में यातना को अपराध माना है। जेनेवा कन्वेंशन और यातना के विरुद्ध कन्वेंशन यातना पहुंचाने वाले व्यक्तियों का अभ्यर्पण या अभियोजन करने के लिए राज्य बाध्य है। सरकारें यातना के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों का अभियोजन करने के लिए सार्वभौमिक अधिकारिता का प्रयोग कर सकती है और अन्तरराष्ट्रीय दांडिक न्यायालय के सदस्य राज्य, अपनी-अपनी अधिकारिता के अधीन, इसके लिए बाध्य हैं कि अपराधों, जिसके अन्तर्गत यातना भी है, का अन्वेषण और अभियोजन करने के लिए न्यायालय के साथ सहयोग करें। सशस्त्र संघर्ष के दौरान, रेड क्रॉस की अन्तरराष्ट्रीय समिति, अन्तरराष्ट्रीय मानव विधि<sup>24</sup> के अनुपालन की निगरानी करती है।

---

<sup>24</sup>ऊपर टिप्पण 19

2.16 नॉन-रिफाउलमेंट (पुनः लौटाने से इतर) का सिद्धांत सताए गए पीड़ितों को उनके सताने वालों को देने से प्रतिषिद्ध करता है और उनके प्रत्यर्पण और आप्रवास के संदर्भ में राज्यों को लागू होता है। पहली बार यह बाध्यता शरणार्थियों की स्थिति के संबंध में संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन, 1951 के अनुच्छेद 33 में उपबंधित की गई थी जिसमें यह उपबंध किया गया है कि “संविदाकारी राज्य किसी शरणार्थी को, किसी भी रीति में चाहे कोई भी हो, जाति, धर्म, राष्ट्रीयता, किसी विशिष्ट सामाजिक समूह या राजनैतिक राय, की सदस्यता के आधार पर ऐसे राज्यक्षेत्र में निर्वासित या नहीं लौटाएगा, जहां उसका जीवन या स्वतंत्रता संकट में हो। इस कर्तव्य को सी.ए.टी. के अनुच्छेद 3 में दोहराया गया है। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य में शरण लेने की पात्रता स्थापित है जिसमें यह दर्शित किया गया है कि आवेदक ने पीड़ा भोगी है या उसको यह “सुस्थापित भय” है कि उसे “सताया जाएगा/सताई जाएगी”।<sup>25</sup> सताने के अन्तर्गत ऐसे क्रियाकलाप भी हैं जो यातना की संकीर्ण परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आते हैं।

2.18 यदि कोई व्यक्ति शरण दिए जाने का पात्र नहीं है तब राज्य उसे ऐसे देश में नहीं भेजेगा जहां उसे यातना दिए जाने का वास्तविक जोखिम है।

## ड. विभिन्न देशों में केट (सी.ए.टी.) का कार्यान्वयन

### (i) यूनाइटेड किंगडम

2.19 सामान्य विधि में यातना प्रतिषिद्ध है, किन्तु प्रिवी काउन्सिल 1628 में फेल्टन के मामले तक यातना वारंट जारी करता रहा और ऐसी प्रक्रिया औपचारिक रूप से केवल 1640 में लॉग संसद के समय समाप्त की गई। स्काटलैंड में ट्रीजन ऐक्ट, 1708<sup>26</sup>(रोजद्रोह अधिनियम, 1708) की धारा 5 द्वारा यातना को प्रतिषिद्ध किया गया।

2.20 क्रिमिनल जस्टिस ऐक्ट, 1988 (दंड न्याय अधिनियम, 1988) की धारा 134 “अपने शासकीय कर्तव्य ..... के निष्पादन में किसी एक और अन्य व्यक्ति को जानबूझकर पीड़ा या यातना पहुंचाता है” ऐसे किसी लोक कर्मचारी को अपराध का

<sup>25</sup>कोड आफ फेडरेल रेग्यूलैशन्ज: एलिन्स एंड नैशनैलिटी, यू.एस. जनरल सर्विस एडमिनिस्ट्रेशन, नेशनल आर्किव्स एंड रिकॉर्ड सर्विस, ऑफिस आफ दि फेडरल रजिस्टर, 2009 एट.पी. 178

<sup>26</sup>टार्चर इन यू.के. लॉ, <https://justice.org.uk/torture-uk-law/> (visited on 26-10-2017) पर उपलब्ध है।

दोषी माना जाएगा। कन्वेंशन (सी.ए.टी.)<sup>27</sup> 1984 के अधीन संयुक्त राज्य (यू.के.) की प्रतिबद्धता के सम्मान में यह उपबंध पुरःस्थापित किया गया था।

2.21 अन्तरराष्ट्रीय विधि के अधीन, मानव अधिकारों पर यूरोपियन कन्वेंशन (ईसीएचआर) के अनुच्छेद 3 के रूप में ऐसी लिखतों के अधीन यातना न केवल प्रतिषिद्ध किया गया है अपितु यह अनिवार्य प्रतिमान के रूप में यह मान्य हो गया है, यह अन्तरराष्ट्रीय विधि का ऐसा अनिवार्य सन्नियम है जो सभी राज्यों को आबद्ध करता है बेशक उन्होंने यातना कन्वेंशन के रूप में ऐसी लिखत पर हस्ताक्षर किया हो या नहीं।<sup>28</sup> ई.सी.एच.आर. के अनुच्छेद 3 के अधीन कुछ अधिकारों में से यातना के विरुद्ध प्रतिषेध का अधिकार एक ऐसा अधिकार है जिसका अल्पीकरण अनुच्छेद 15 के आपातकाल की स्थिति में भी नहीं किया जा सकता है।

2.22 यू.के. की सरकार ने इस बात को बनाए रखा है कि वह किसी व्यक्ति को ऐसे देश को नहीं लौटाएगी जहां उसे यातना दिए जाने का जोखिम हो। ह्यूमन राइट ऐक्ट, 1998 (मानव अधिकार अधिनियम, 1998) का नियमित रूप से प्रत्यर्पण और देशान्तरण के मामलों में अवलंब लिया गया है और सरकार के इस अवधारणा को चुनौती दी जाती रही है कि बुरे बर्ताव का जोखिम अस्तित्व में है या नहीं।<sup>29</sup>

## (ii) संयुक्त राष्ट्र अमेरिका

2.23 वर्ष 1992 संयुक्त राष्ट्र अमेरिका आईसीसीपीआर का एक पक्षकार हो गया, इसके कुछ उपबंधों को केट (सीएटी) में के उपबंधों से अधिक व्यापक रूप से लागू होने वाला माना जा सकता है।

इस प्रसंविदा के अधीन संयुक्त राष्ट्र की आरंभिक रिपोर्ट, जिसमें प्रसंविदा के अधीन बाध्यताओं के कार्यान्वयन का अनुपालन करने से संबंधित साधारण जानकारी का

---

<sup>27</sup>यथोक्त

<sup>28</sup>प्रोसीक्यूटर बनाम फूरनडाजीजा (1998) आईसीटीवाई, 10 दिसंबर, 1998 के पैरा 147-157 वाला मामला देखें

<sup>29</sup>साइफी बनाम ब्रीक्सटन, (2001) 4 ऑल इंग्लैंड रिपोर्टर 168 देखें।

उपबंध किया गया है, मानवाधिकार समिति को जुलाई, 1994<sup>30</sup> को प्रस्तुत किया गया था।

2.24 पूरे अमेरिका में यातना प्रतिषिद्ध है। विनिर्दिष्ट रूप से नीति विषयक के रूप में और राज्य प्राधिकारी के साधन के रूप में इसके अन्त की घोषणा की गई है। कन्वेंशन के अधीन प्रत्येक ऐसा कृत्य यातना है जिसे अमेरिका की विधि के अधीन दांडिक अपराध माना गया है। सरकार का कोई कर्मचारी चाहे वह परिसंघ, राज्य या स्थानीय सिविलियन या सेना का हो वह यातना कारित करने या किसी और व्यक्ति को यातना कारित करने के लिए अनुदेश देने के लिए प्राधिकृत नहीं है। यातना को न्यायोचित्य ठहराने के लिए आपवादिक परिस्थितियों का अवलंब नहीं लिया जा सकता है। अमेरिका की विधि में ऐसा कोई उपबंध अन्तर्विष्ट नहीं है जो यातना या अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंडादेश या अत्यावश्यक परिस्थितियों के आधारों पर (उदाहरणार्थ लोक आपातकाल की स्थिति के दौरान) या उच्चतर अधिकारी से आदेशों के आधार पर अन्यथा प्रतिषिद्ध कृत्यों का अनुज्ञात करता हो, और कोई स्वतंत्र न्यायपालिका की संरक्षण प्रणाली निलंबन के अध्यधीन नहीं है।<sup>31</sup>

2.25 वर्ष 1994 में संयुक्त राष्ट्र कांग्रेस ने महत्वपूर्ण विधान अधिनियमित किया जिसमें महान्यायवादी (अटार्नी जनरल) को विधि प्रवर्तन अभिकरणों द्वारा किए गए अवचार के पैटर्न या पद्धति के लिए और किशोरों को कारावास में डालने के लिए जिम्मेदार अभिकरणों से प्रतितोष अभिप्राप्त करने के लिए सिविल विधि वाद सांस्थित करने के लिए प्राधिकृत किया गया है। न्याय विभाग इस कानून और पुरानी विधियों को जो विधि प्रवर्तन और सुधार अधिकारी जो जानबूझकर व्यक्तियों को उनके संवैधानिक अधिकारों से वंचित करते हैं उनके दांडिक अभियोजन करने की अनुज्ञा देता है और ऐसे कानून जो कारागारों और स्थानीय कारागारों<sup>32</sup> में बुरा व्यवहार करने

---

<sup>30</sup> यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंडादेश के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन <https://www.state.gov/documents/organization/100296.pdf> (visited on 26-10-2017).

<sup>31</sup> उपरोक्त

<sup>32</sup> यथोक्त

की स्थिति सिविल अनुतोष अभिप्राप्त करने के लिए न्याय विभाग को समर्थ बनाते हैं।

2.26 आतंकी हमले 9/11 के पश्चात् वर्ष 2001 में गुआंटानामों खाड़ी के नौसेना के अड्डे के भीतर अवस्थित गुआंटानामों खाड़ी निरोध शिविर में अभिकथित नेताओं और संदिग्ध आतंकी संगठनों के सदस्यों के निरोध के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र प्रशासन की व्यापक रूप से आलोचना हुई थी। मानव अधिकारों का अतिक्रमण के अभिकथन किए गए थे। संयुक्त राष्ट्र के उच्चतम न्यायालय द्वारा निरंतर रूप से यह अभिनिर्धारित किया गया है कि गुआंटानामों में निरुद्ध व्यक्तियों के पास बन्दी प्रत्यक्षीकरण पुनर्विलोकन के लिए परिसंघीय न्यायालयों में याचिका करने का कानूनी अधिकार है और न्यायालयों को इन निरुद्ध व्यक्तियों की याचिकाओं<sup>33</sup> को सुनने की अधिकारिता है।

2.27 संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने यातना के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र समिति को समय-समय पर तारीख 12 अगस्त, 2013 को प्रस्तुत की गई रिपोर्ट (तीसरी, चौथी और पांचवीं रिपोर्ट)<sup>34</sup> में अमेरिका ने यह उद्घृत किया कि भूतपूर्व राष्ट्रपति बुश ने 2006 में यह कहा था कि “युद्ध के दौरान कम संख्या में संदिग्ध आतंकवादी नेताओं और प्रतिक्रियावादियों को पकड़ा गया था और केन्द्रीय आसूचना अभिकरण (सी.आई.ए.) द्वारा संचालित अलग कार्यक्रम में अमेरिका से बाहर उनसे पूछताछ की थी”। रिपोर्ट में आगे यह उल्लेख किया गया है कि “उन्होंने आगे यह घोषणा कि 14 व्यक्तियों को केन्द्रीय आसूचना अभिकरण (सी.आई.ए.) से गुआंटानामों स्थित अभिरक्षा से डी.ओ.डी. गुआंटानामों में स्थानान्तरित कर दिया गया था”। तथापि, रिपोर्ट में “किसी गुप्त निरोध स्थान” के अस्तित्व के होने से इंकार किया गया था।

### (iii) रशियन फेडरेशन

<sup>33</sup>रसूल बनाम बुश, 542 यू.एस. 466(2004); हमीदी बनाम रमसफील्ड 542 यू.एस. 507(2004); हमदान ब. रमसफील्ड, 548 यू.एस. 557(2006); बाउमैंडस बनाम बुश 553 यू.एस. 723(2008) द्वारा

<sup>34</sup><https://www.state.gov/j/drl/rls/213055.htm> (20 अक्टूबर, 2017 को अंतिम बार देखा गया)



2.28 रशियन फेडरेशन केट (सी.ए.टी.) और आईसीसीपीआर और इसके पहले आनुकल्पिक प्रोटोकाल का एक पक्षकार है। इन दोनों संधियों में यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंडादेश के प्रयोग को प्रतिषिद्ध किया गया है। रूस के संविधान, 1993 के अनुच्छेद 21(2) में यह उपबंध किया गया है कि “कोई भी व्यक्ति यातना या अन्य क्रूरतापूर्ण या अपमानजनक व्यवहार या दंडादेश के अध्वधीन नहीं होगा। स्वेच्छा सहमति के बिना कोई भी व्यक्ति चिकित्सा, वैज्ञानिक या अन्य प्रयोग के अध्वधीन नहीं होगा”।

2.29 रशियन फेडरेशन ने मई, 1998 में ईसीएचआर का अनुसमर्थन किया। वर्ष 2002 में न्यायालय ने, प्राण का अधिकार (अनु.2), उचित विचारण का अधिकार (अनु.6) यातना और अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार का प्रतिषेध (अनु.3), व्यक्ति की स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार (अनु.5) निजी और पारिवारिक जीवन, मकान और पत्र-व्यवहार की बाबत अधिकार (अनु.8), अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार (अनु.10), प्रभावी उपचार का अधिकार (अनु.13) और न्यायालय के साथ सहयोग करने की बाध्यता (अनु.38)<sup>35</sup>, अतिक्रमण करने का दोषी पाया।

2.30 जनवरी 2003 में यूरोपियन न्यायालय ने चेचन्या में मानव अधिकार के अतिक्रमण से संबंधित आवेदनों को ग्रहण किया। आवेदकों ने यह अभिकथन किया था कि 1999-2000 में चेचन्या में सैन्य कार्रवाई के अनुक्रम में रूस की सेना ने उनके अधिकारों का अतिक्रमण किया है। वर्ष 2005 में कुछ मामलों<sup>36</sup> में न्यायालय ने पाया कि रशियन फेडरेशन ने अनुच्छेद 2 (प्राण का अधिकार), अनुच्छेद 3 (यातना और अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार का प्रतिषेध), और अनुच्छेद 13 (प्रभावी उपचार का अधिकार) मानव अधिकारों पर यूरोपियन कन्वेंशन और अनुच्छेद 1 कन्वेंशन के प्रोटोकाल सं.1 के अनुच्छेद 1 (संपत्ति का संरक्षण) का अतिक्रमण किया है।

---

<sup>35</sup>बुरजेव ब. रशिया, ईसीएचआर, आईएचआरएल (ईसीएचआर 2009)

<sup>36</sup>खसीयेव और अकयेवा ब. रशिया, 57942/00; 57945/00, यूरोप की परिषद: यूरोपीयन कोर्ट ऑफ ह्यूमन राइट्स, 19 दिसंबर, 2002 <http://www.refworld.org/cases,ECHR,3e4bce247.html>. पर उपलब्ध है।

2.31 चेचन्या और अन्य उत्तरी काउकेसस रिपब्लिक के मामलों<sup>37</sup> में दिए गए निर्णयों के कारण रशियन न्याय और अन्य द्वारा महत्वपूर्ण विवादों को स्पष्ट करने के लिए पहल की गई जैसे कि रिश्तेदारों के साथ अमानवीय व्यवहार से क्या गठित होता है और किन परिस्थितियों के अधीन यह अभिनिर्धारित करना संभव है कि गायब होना प्राणों के अधिकार का अतिक्रमण है, और न्यायालयों के साथ सहयोग करने की जब दलील दी जाती है तब प्रत्यर्थी राज्य की क्या बाध्यता है।

#### (iv) चीन

2.32 चीन ने वर्ष 1988 में कैट (सी.ए.टी.) का अनुसमर्थन किया। इसके अनुसमर्थन से समिति ने चार पुनर्विलोकन किए हैं और इसका पांचवा पुनर्विलोकन चक्र चल रहा है। यातना के विरुद्ध समिति-विशेषज्ञों का अन्तरराष्ट्रीय पैनल जिसने कैट के अधीन राज्य के अनुपालन का निर्धारण किया है अंतिम बार 2008 में चीन का पुनर्विलोकन किया था। तब से सरकार ने संदिग्ध को कठोर यातना जिसके कारण घरेलू पत्रकारों ने कई मामले उजागर किए जिनमें विधि विरुद्ध दोषसिद्धि, मृत्यु और जनता की पीड़ा<sup>38</sup> सामने आने के पश्चात् चीन की सरकार ने अपनी दांडिक न्याय पद्धति में कई सुधार किए हैं।

#### (v) फ्रांस

2.33 फ्रांस, यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंडादेश का सामना करने के लिए प्रतिबद्ध है। फ्रांस ने कैट (सीएटी) का अनुसमर्थन कर दिया है। फ्रांस ने यातना के विरुद्ध कन्वेंशन के आनुकल्पिक प्रोटोकाल पर हस्ताक्षर कर दिए हैं। तदनुसार इसने, स्वतंत्रता के वंचन के स्थानों के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र महा-नियंत्रक के रूप में राष्ट्रीय निवारक प्रणाली स्थापित की है जो यह

---

<sup>37</sup>यह भी देखें केलाशनिकोव ब. रसिया 47095/99, यूरोप की परिषद:यूरोपियन कोर्ट ऑफ ह्यूमन राइट्स, 15 जुलाई, 2002 <http://www.refworld.org/cases,ECHR,416bb0d44.html>;पर उपलब्ध है।

<sup>38</sup>चीन:संयुक्त राष्ट्र पुनर्विलोकन पर यातना पर सत्य बताएं,

<https://www.hrw.org/news/2015/11/11/china-tell-truth-torture-un-review> (26-10-2017 को देखा गया)।

सुनिश्चित करने के लिए जिम्मेदार है कि निरुद्ध व्यक्तियों के मूल अधिकारों का सम्मान किया जाए।<sup>39</sup>

2.34 फ्रांस, यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंडादेश के निवारण के लिए, यूरोपीयन कन्वेंशन और इसके प्रोटोकाल का भी पक्षकार है। इस कन्वेंशन ने निरोध<sup>40</sup> के स्थानों पर जाने और निरीक्षण के लिए एसपीटी की तरह जिम्मेदार यातना के लिए निवारण के लिए (सीपीटी) एक यूरोपियन समिति स्थापित की है।

#### च. विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय न्यायनिर्णयन मंचों द्वारा घोषणाएं

2.35 सुसंगत उपबंधों के अधिन विभिन्न क्षेत्रीय और अन्तरराष्ट्रीय संधियों द्वारा प्रतिषिद्ध क्रियाकलापों पर यातना और अमानवीय व्यवहार के संबंध में कार्यवाही करते समय अन्तरराष्ट्रीय न्यायनिर्णय मंच के संबंध में विचार किया गया।

##### (i) क्रूरतापूर्ण व्यवहार और यातना की परिभाषा

2.36 यूरोपियन न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया है कि कन्वेंशन के अनुच्छेद 3 के अधीन किसी दावे को स्थापित करने के लिए किसी आवेदक को कतिपय मानक अवश्य पूरे करने चाहिए: “बुरे बर्ताव के लिए कठोरता का न्यूनतम स्तर अवश्य होना चाहिए यदि यह कन्वेंशन के अनुच्छेद 3 के विस्तार के अन्तर्गत आना चाहता है। कठोरता के इस न्यूनतम स्तर का निर्धारण सापेक्ष है, यह मामले की पूरी परिस्थितियों जैसे कि व्यवहार की अवधि, इसका शारीरिक और मानसिक प्रभाव और कुछ मामलों में, लिंग, आयु और पीड़ित के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है। अनुच्छेद 3 के अर्थ के अन्तर्गत ‘अपमानजनक’ व्यवहार आता है या नहीं इस संबंध में विचार करते समय न्यायालय को इसके उद्देश्य को ध्यान में रखना चाहिए कि संबंधित व्यक्ति

---

<sup>39</sup> फ्रांस और जबरदस्ती गायब, यातना और मनमाने निरोध के विरुद्ध लड़ाई <https://www.diplomatie.gouv.fr/en/french-foreign-policy/human-rights/enforced-disappearance-torture-and-arbitrary-detention/article/france-and-the-fight-against> (26-10-2017 को देखा गया)।

<sup>40</sup> यथोक्त

का मानमर्दन करने से उसका चरित्र दूषित हुआ है या नहीं और जहां तक परिणामों का संबंध है इससे उसका व्यक्तित्व प्रतिकूल रूप से प्रभावित होता है या नहीं जो अनुच्छेद 3 से किसी भी रीति के अनुरूप है या नहीं। यह उल्लेखनीय है कि ऐसे किसी प्रयोजन की अनुपस्थिति में निश्चित रूप से अतिक्रमण के किसी निष्कर्ष को नहीं नकारा जा सकता है। इसके अतिरिक्त यातना और अपमान किसी दशा में किया गया विधिसम्मत व्यवहार या दिया गया दंडादेश में किसी रूप में संबंधित यातना या अपमान अनिवार्य तत्त्व से परे है।<sup>41</sup>

2.37 आयरलैंड बनाम यूनाटेड किंगडम<sup>42</sup> वाले मामले में मानव अधिकारों के यूरोपियन न्यायालय ने व्यवहार की कठोरता का अवधारण करने के लिए कुछ कारण अधिकथित किए हैं जैसे कि आयु, लिंग और पीड़ित के स्वास्थ्य की दशा पर विचार करना चाहिए। न्यायालय ने पूछताछ की कतिपय रीतियों की भी परीक्षा की थी, इनमें से किसी को भी तीक्ष्ण क्षति कारित करने वाला नहीं पाया गया था, निष्कर्ष यह है कि काफी लंबे समय तक निरुद्ध व्यक्तियों को बलपूर्वक शोर के अध्यक्षीन रखना और उन्हें खाने, जल और निद्रा से वंचित करना दुर्यवहार की श्रेणी में आता है, किन्तु यह अभिनिर्धारित करने से इनकार कर दिया कि यह व्यवहार यातना के समतुल्य है। इस मामले में प्रतिषेध को लागू करने पर जोर दिया गया है यहां तक कि आतंकवादी और लोक खतरे के मामले भी इसके अन्तर्गत आते हैं। इस मामले में यह निष्कर्ष निकालने की प्रदर्शित अनिच्छा व्यक्त की है दुर्यवहार यातना के समतुल्य है यह कठोरता के स्तर पर आधारित है जिसे पश्चात्कर्ती निर्णयज विधि में नकार दिया गया कि इससे यूरोपियन कन्वेंशन के अधीन प्रारंभ में ही यह निष्कर्ष निकालने के लिए न्यून कर दिया है कि यातना पहुंचाई गई है।<sup>43</sup>

<sup>41</sup>बेनराइट ब. यूनाटेड किंगडम, आवेदन सं. 12350/04(2007)44 ई.एच.आर.आर. 40

<sup>42</sup>आवेदन सं. 5320/71(1978), लबीता बनाम इटली, आवेदन सं. 26772/95, 6 अप्रैल 2000 का निर्णय, सेलमौइनी बनाम फ्रांस, आवेदन सं. 25803/94, 28 जुलाई 1999 का निर्णय और चहल बनाम यूनाईटेड किंगडम, आवेदन सं. 22414/93, 15 नवंबर 1996 का निर्णय।

<sup>43</sup>अशकोय बनाम टर्की 1996-VI यूरोप सीटी- एचआर 2260, आइदिन बनाम टर्की, 1997-V यूरोप सीटी. एचआर 1866, 1873-74, 1891, और सेलमौइनी बनाम फ्रांस, आवेदन सं. 25803/94, 28 जुलाई 1999 का निर्णय (प्रत्येक निष्कर्ष पर यह भी निर्धारित किया गया कि आवेदकों द्वारा जो बुरा व्यवहार किया गया है वह यातना की कोटि में आता है)

2.38 यह निर्णय करने के लिए कि आवेदक को यातना पहुंचाई गई है या नहीं या कम कठोर प्रकार का दुर्व्यवहार किया गया है इसके लिए जितना दुर्व्यवहार किया गया है उसकी सहायता से न्यायालय को किए गए ऐसे व्यवहार का अवधारण करने में सहायता मिल सकती है यदि निरुद्ध व्यक्ति के साथ अनावश्यक शारीरिक बल का प्रयोग करके उसकी मानवीय गरिमा का ह्रास किया जाता है तब इससे मानव अधिकार की यूरोपियन कन्वेंशन का अतिक्रमण होता है।<sup>44</sup>

## (ii) मानसिक पीड़ा

2.39 विभिन्न मानव अधिकार निकायों ने यह अभिस्वीकार किया है कि यातना या अमानवीय व्यवहार को साबित करने के लिए शारीरिक घटक की आवश्यकता नहीं है। मानव अधिकार की यूरोपियन कन्वेंशन ने यह पाया कि किसी संदिग्ध अपराधी को अमेरिका को अभ्यर्पित इसलिए किया जा सकता है क्योंकि उसे मानसिक हानि पहुंच सकती है यदि उसे मृत्यु का दंडादेश दिया जाता है और मृत्यु की कतार<sup>45</sup> में रखा जाता है।<sup>45</sup>

2.40 किसी व्यक्ति को लक्ष्य बनाकर अपमान करने की कार्रवाई या मानसिक पीड़ा पहुंचाना, यातना या अमानवीय व्यवहार हो सकता है और इससे मानव गरिमा के अधिकार का भी अतिक्रमण होता है।<sup>46</sup>

2.41 केनट्रोएल-बेनावाइडस बनाम पेरू<sup>47</sup> वाले मामले में अन्तर-अमेरिकन आयोग ने यह पाया कि “अन्तरराष्ट्रीय मानकों के अनुसार संरक्षण, यातना न केवल शारीरिक

<sup>44</sup>सेलमौइनी बनाम फ्रांस, आवेदन सं. 25803/94, 28 जुलाई 1999 का निर्णय

<sup>45</sup>सोइरिंग बनाम यूनाइटेड किंगडम, आवेदन सं. 25803/94, 28 जुलाई 1999 का निर्णय। अन्य मामलों के लिए जिनमें मानसिक क्षति पहुंचाना है किन्तु इसके अंतर्गत शारीरिक हिंसा नहीं है वी. बनाम यूनाइटेड किंगडम, आवेदन सं. 24888/94, 16 दिसंबर 1999 का निर्णय और एक्स एंड वाई बनाम नीदरलैंड, आवेदन सं. 8978/80, 26 मार्च 1985 का निर्णय।

<sup>46</sup>मालवी अफ्रीकन एसोसिएशन एंड अदर बनाम मौरितानिया, अफ्रीकन कमिशन ऑन ह्यूमन एंड पीपल्स राइट्स, कमिशन सं. 54/91, 61/91, 98/93, 164/97 ए 196/97 एंड 210/98 (2000)।

<sup>47</sup>(1/ए कोर्ट एचआर, जजमेंट ऑफ अगस्त 18, 2000, एसइआर. सी. नं. 69 (2000) आईएसीएचआर 6. मारीतजा यूरीतियां बनाम गौउटेमाला ऑफ नवंबर 27, 2003, इंटर-अमेरिका, सीटी एचआर, (एसइआर. सी) नं. 103 (2003), यह निष्कर्ष निकाला कि पीड़ित के साथ शारीरिक हिंसा कि गई थी जो यातना कि कोटी के अंतर्गत आती हैं और मानसिक हिंसा से क्रूरता और अमानवीय व्यवहार की कोटी में आती है।

हिंसा द्वारा पहुंचाई जा सकती है अपितु कृत्यों के माध्यम से भी पीड़ित को कठोर शारीरिक, मानसिक नैतिक पीड़ा पहुंचाई जा सकती है। इस मामले में न्यायालय ने यह पाया कि पीड़ित द्वारा आक्रामक कृत्यों से भोगी गई पीड़ा को शारीरिक या मानसिक पीड़ा के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है और यह कि ऐसे कृत्यों को विनिर्दिष्ट रूप से पीड़ित को नीचा दिखाकर उससे अपराध में फंसाने वाले साक्ष्य को अभिप्राप्त करने के लिए किया गया था।

2.42 कई मामलों में यह निष्कर्ष निकाला गया है कि गायब हो जाने वाले पीड़ित व्यक्ति के परिवार के सदस्यों के अधिकारों का अतिक्रमण उन्हें वेदना पहुंचाने के रूप में किया गया है। उचित रूप से गायब होने वाले व्यक्ति या हत्या के लिए दोषकर्ता के विरुद्ध अन्वेषण और उसे दंडित करने में राज्य की असफलता के कारण उन्हें पीड़ा भोगनी पड़ी है।<sup>48</sup>

### (iii) शारीरिक दंड

2.43 शारीरिक दंड एक क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंडादेश है जिससे यातना के प्रतिषेध का अतिक्रमण होता है। मानव अधिकार समिति ने यह अभिनिर्धारित किया है कि प्रसंविदा के अनुच्छेद 7 द्वारा शारीरिक दंड प्रतिषिद्ध है<sup>49</sup>। अफ्रीकन आयोग ने यह निष्कर्ष निकाला कि शारीरिक दंड से गरिमा<sup>50</sup> के मानव अधिकार का अतिक्रमण होता है।

### (iv) कैदियों और निरुद्ध व्यक्तियों के साथ व्यवहार

<sup>48</sup> क्वीन्टस बनाम उरुगुए, ह्यूमन राइट्स कमिटी कम्यूनिकेशन नं. 107/1981, व्यू ऑफ 21 जुलाई 1983; केस ऑफ दि 'स्ट्रीट चिल्ड्रन' (विलाग्रान-मोराल्स) इटी एएल. बनाम गौडेटमाला, इंटर-अमेरिका सीटी एचआर, 19 नवंबर 1999; लोरिएनो बनाम पेरू, कम्यूनिकेशन नं. 540/1993, व्यू आफ 25 मार्च 1996; कूर्त बनाम टर्की, आवेदन सं. 15/1997/799/1002, जजमेंट ऑफ 25 मई 1998। इन केकी बनाम टर्की, आवेदन सं. 23657/94, जजमेंट आफ 8 जुलाई 1999, पैरा 98-99)।

<sup>49</sup> ओसबोर्न बनाम जमैका, कम्यूनिकेशन नं. 759/1997, यू.एन. डॉक. सीसीपीआर / सी / 68 / डी / 759/1997 (2000)

<sup>50</sup> करटीस फ्रांसिस डोइबलर बनाम सूडान, अफ्रीकन कमिशन आन ह्यूमन एंड पीपल्स राइट्स, कम्यूनिकेशन नं. 236/2000 (2003)

2.44 एनट्टी ब्यूलेनी बनाम फिनलैंड<sup>51</sup> वाले मामले में मानव अधिकार समिति ने फिनिश पैदल सैनिक के एकांत परिरोध के एक मामले की परीक्षा की थी। समिति ने यह अभिनिर्धारित किया कि दंडादेश अपमानजनक, वेदना पहुंचाना या दूषित हो सकता है जब इसमें विशिष्ट स्तर और निश्चित कोई ऐसी घटना घटित हुई हो जो स्वतंत्रता के वंचन के कृत्य से परे हो और अन्य तत्व अन्तर्ग्रस्त हो। अभिकथित बुरे बर्ताव की तीव्रता की अवधारणा में न्यायालय को अपने समक्ष मामले की सभी परिस्थितियों पर विचार करना चाहिए जिसके अन्तर्गत व्यवहार करने की अवधि और रीति, इसका शारीरिक और मानसिक प्रभाव तथा पीड़ित का लिंग, आयु और स्वास्थ्य की दशा भी है।

2.45 इसके विपरीत, मानव अधिकार समिति ने पोले केम्पोश बनाम पेरू<sup>52</sup> वाले मामले में यह निष्कर्ष निकाला कि किसी मामले में सार्वजनिक रूप से पीड़ित को दिखाना और एक छोटी कोठरी में दिन में 23 घंटे के लिए अलग-थलग रखना और दिन में केवल 10 मिनट के लिए सूर्य की रोशनी में लाने से आई.सी.सी.पी.आर. के अनुच्छेद 7 और 10 का अतिक्रमण होता है।

2.46 इन्टरनेशनल पेन और अन्य बनाम नाइजीरिया<sup>53</sup> वाले मामले में मानव और जनता के अधिकारों पर अफ्रीकन आयोग ने यह अभिनिर्धारित किया कि जहां राज्य ने मृत्यु दंड के लिए व्यक्तियों के हाथ-पैर में बेडिया जकड़कर निरुद्ध किया है और उन्हें अटार्नी और आवश्यक ओषधियों से वंचित किया है तो इससे अफ्रीकन चार्टर के अनुच्छेद 5 का अतिक्रमण होता है।

2.47 मानव अधिकार के यूरोपियन न्यायालय ने भी राज्य कर्मचारियों द्वारा किए गए बुरे बर्ताव की बाबत उपधारणा के आधार पर निर्णयज विधि विकसित की है। उदाहरणार्थ, इसने यह उल्लेख किया है कि “जहां किसी व्यक्ति को अच्छे स्वास्थ्य में

---

<sup>51</sup>कम्यूनिकेशन नं. 265/1987, यू.एन. डॉक. सप्ली. नं. 40 (ए/44/40) एट 311 (1989)।

<sup>52</sup>कम्यूनिकेशन नं. 577/1994 (1997)। लॉएजा तेमायू केस, रेपरेशन्स, जर्मेन ऑफ नवंबर 27, 1998, इंटर-अमेरिका सीटी. एचआर. (एसइआर. सी) नं. 42 (1998) (यह निष्कर्ष निकाला कि इसी प्रकार के व्यवहार से अमेरिकन कनवेंशन के अधीन आवेदकों के अधिकारों का अतिक्रमण होता है)।

<sup>53</sup>कम्यूनिकेशन नं. 137/94, 139/94, 154/96 एंड 161/97 (1998)।

अभिरक्षा में लिया जाता है किन्तु रिहाई के समय उसे क्षतिग्रस्त पाया जाता है तब राज्य के लिए यह आवश्यक है कि ये क्षतियां कैसे पहुंची इस संबंध में युक्तियुक्त स्पष्टीकरण दे और पीड़ित के अभिकथन पर संदेह के कारणों का निवारण करने के लिए विशेष रूप जब चिकित्सा रिपोर्ट द्वारा अभिकथनों की संपुष्टि की गई हो तो साक्ष्य प्रस्तुत करें। यदि ऐसा करने में राज्य असफल रहता है तब कन्वेंशन<sup>54</sup> के अनुच्छेद 3 के अधीन स्पष्ट विवाद्यक उद्भूत होता है।

2.48 उत्तरी आयरलैंड में वर्ष 1971 और वर्ष 1975 के बीच आतंकवादी क्रियाकलापों के संदिग्धों से पूछताछ में पांच विशिष्ट तकनीकों के संयोजन- दीवार पर खड़ा होना, हड्डिग, वाइट नोएज के अधीन रखना निद्रा, खाने और पेय से वंचित करने को मानव अधिकार के यूरोपियन न्यायालय द्वारा अमानवीय और अपमानजनक व्यवहार और यातना की पद्धति को अनुच्छेद 3 का अतिक्रमणकारी अभिनिर्धारित किया है। न्यायालय ने “अपमान” जिसके अन्तर्गत ऐसा व्यवहार है जो भय, वेदना और हीनता महसूस कराता है और जो पीड़ित को यातना या नीचा दिखाने के लिए समर्थ है और संभवतया उन्हें शारीरिक या नैतिक रूप से तोड़ता<sup>55</sup> है। न्यायालय ने यह कहा कि अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार विधिसम्मत व्यवहार या दिए गए दंडादेश से संबंधित अनिवार्य तत्व के परे है तब इसे अनुच्छेद 3<sup>56</sup> का अतिक्रमणकारी माना जा सकता है।

2.49 अनुच्छेद 3 के विस्तार के अंतर्गत आने के लिए बुरे बर्ताव का न्यूनतम स्तर ऐसा होना चाहिए जिससे न्यूनतम निर्धारण सापेक्ष हो और ‘मामले की सभी परिस्थितियों पर निर्भर हो’<sup>57</sup>। अनुच्छेद 3 के अर्थान्तर्गत कोई दंडादेश या व्यवहार ‘अपमानजनक’ है या नहीं इस विवाद्यक पर विचार करते हुए न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि इसका उद्देश्य संबंधित व्यक्ति का अपमान या उसे नीचा दिखाना है और जहां तक परिणामों का संबंध है यदि इससे

---

<sup>54</sup>याव्युज बनाम टर्की आवेदन सं. 32577/02, जजमेंट आफ 29 सितंबर 2008

<sup>55</sup>आयरलैंड बनाम यूनाइटेड किंगडम [1978]2 ईएचआरआर 25

<sup>56</sup>कुडला बनाम पोलैंड, (2000) आवेदन सं. 30210/96, 26 अक्टूबर 2000

<sup>57</sup>यथोक्त



उसके व्यक्तित्व पर ऐसी किसी भी रीति से प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तो यह अनुच्छेद 3<sup>58</sup> के अनुरूप नहीं है।

2.50 अनुच्छेद 3 के अतिक्रमण से बचने के लिए स्वतंत्रता से वंचित व्यक्तियों के स्वास्थ्य का संरक्षण करने के लिए प्राधिकारी इस बाध्यता के अधीन है कि निरोध के दौरान अपेक्षित चिकित्सा देखभाल की जाए।<sup>59</sup> मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों की दशा में यह निर्धारण करने के लिए कि संबंधित व्यवहार अनुच्छेद 3 के संगत है या नहीं तब इस संबंध में यह विचार करना होगा कि उनकी भेद्यता और उनकी असमर्थता कुछ मामलों में शिकायत से बिल्कुल असंगत है या किसी विशिष्ट व्यवहार से वे कैसे प्रभावी होते हैं।<sup>60</sup>

2.51 पर्याप्त चिकित्सा उपचार से वंचित करना और भूख हड़ताल के समय जबरदस्ती खिलाना तथा उसके चिकित्सा उपचार के सुसंगत दस्तावेजों को पेश न करने को अनुच्छेद 3<sup>61</sup> का अतिक्रमणकारी अभिनिर्धारित किया गया है।

2.52 यातना पर विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय कन्वेंशनों की बाबत पूरे विश्व में अभिभावी परिदृश्य में पूरे ब्योरों का आयोग ने अध्ययन किया है। आयोग ने यह उल्लेख किया है कि यद्यपि, भारत ने यातना के विरुद्ध कन्वेंशन पर हस्ताक्षर कर दिए हैं किन्तु अभी उसका अनुसमर्थन नहीं किया है। कन्वेंशन का अनुसमर्थन न करने से अभ्यर्पण से संबंधित मामलों में कठिनाइयां हो सकती हैं क्योंकि विदेशी न्यायालय कन्वेंशन के अनुरूप यातना विरोधी विधि के अभाव में अभ्यर्पण को नामंजूर कर सकते हैं या अभ्यर्पण पर परिसीमा अधिरोपित कर सकते हैं।<sup>62</sup>

---

<sup>58</sup>कीनन बनाम यू.के. (2001) 33 ईएचआरआर 913

<sup>59</sup>हूरताइ बनाम स्विट्जरलैंड (1994) आवेदन सं. 1754/90, 28 जनवरी; खूडोबीन बनाम रशिया, आवेदन सं. 59696/00, 26 अक्टूबर, 2006; और प्रीति बनाम यू.के. (2002) 35 ईएचआरआर भी देखें 1

<sup>60</sup>हरकेजीफेलवी बनाम ऑस्ट्रिया [1992]; अर्टस बनाम बेलजियम [1998]

<sup>61</sup>नेवमर्जीटस्की बनाम यूक्रेन (2005) आवेदन सं. 54825/00, 5 अप्रैल

<sup>62</sup>सैफी बनाम ब्रिक्सटन प्रिज़न

### अध्याय- 3

#### विभिन्न आयोगों द्वारा यातना से संबंधित विवादों की परीक्षा

3.1 यातना “केवल शारीरिक नहीं होती है, जानबूझकर ऐसी मानसिक और मनोवैज्ञानिक यातना देना है जिससे भय सृजित करके अपनी मांग मनवाने के लिए पीड़ित को मजबूर या आदेश किया जा सके।”<sup>63</sup>

3.2 विश्व चिकित्सा एसोसिएशन ने अपने टोक्यो डिकलरेशन, 1975 में यातना को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया है अर्थात् “एक या अधिक व्यक्तियों द्वारा जानबूझकर, पद्धतिबद्ध या अनियंत्रित रूप से किसी प्राधिकारी के आदेशों पर कार्य करते हुए एक या अधिक व्यक्तियों द्वारा शारीरिक या मानसिक वेदना पहुंचाना जिससे किसी और व्यक्ति की किसी अन्य कारण के लिए संस्वीकृति प्राप्त की जा सके।”<sup>64</sup>

3.3 महमूद नय्यर आजम ब. छत्तीसगढ़ राज्य<sup>65</sup> वाले मामले में न्यायालय ने अभिरक्षा में ‘सताने’ के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए ‘सताने’ के संबंध में कार्यवाही करते समय ‘सताने’ के शब्दकोश के अर्थ को निर्दिष्ट करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया था:

“पी. रामानाथ अय्यर के विधि शब्दकोश के द्वितीय संस्करण में ‘सताना’ शब्द को परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है:-

“सताना” “क्षति पहुंचाना” और “क्षति” शब्दों के कई व्यापक और प्रचलित अर्थ हैं और इनके विधिक अर्थ भी हैं। इन शब्दों और “सताना” शब्द के बीच फर्क किया जा सकता है और “सताना” शब्द पश्चात्कर्तृ शब्द से “क्षति पहुंचाना” और “क्षति” शब्द के अन्तर्गत लाने से अपवर्जित किया जा सकता है। “सताना” शब्द के पर्यायवाची शब्द हैं: निढाल करना,

<sup>63</sup>अरविंद सिंह बग्गा बनाम उ.प्र. राज्य, एआईआर 1995 एससी 117

<sup>64</sup>डा. जस्टिस ए एस आनंद, भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति ने आठवीं अन्तरराष्ट्रीय विचार-गोष्ठी में यातना पर दिया गया भाषण, (1999) 7 एससीसी 10 (जे)

<sup>65</sup>एआईआर 2012 एससी 2573

थकाना, व्याकुल करना, परेशान करना, छेड़ना, घबरा देना, छेड़छाड़ करना, तंग करना, विघ्न डालना है। इन सबका संबंध मानसिक पीड़ा पहुंचाने और आत्मा को कष्ट पहुंचाने से है। “सताना” पद के गुणार्थक विस्तार के अन्तर्गत “यंत्रणा” और “दुख” भी शामिल है। “यातना” पद में “यंत्रणा” भी सम्मिलित है। “यातना” शब्द अपने मुख्यार्थक सिद्धांत में मानसिक और मनोवैज्ञानिक रूप से सताना सम्मिलित है। अभिरक्षा में अभियुक्त क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार के कारण बहुत अधिक मनोवैज्ञानिक दबाव में होता है”।

#### क. राष्ट्रीय आयोग-संविधान की कार्यप्रणाली का पुनर्विलोकन

3.4 विधि मंत्रालय द्वारा स्थापित राष्ट्रीय आयोग ने संविधान (2002) की कार्यप्रणाली के पुनर्विलोकन में विनिर्दिष्ट रूप से ‘यातना और क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंडादेश के प्रतिषेध’ की सिफारिश की है जबकि हमारे संवैधानिक न्यायशास्त्र में यातना को मान्यता दी गई है और विभिन्न उच्चतम न्यायालय के निर्णयों में अधिकथित उक्ति के आधार पर अनुच्छेद 21(2) के रूप में मूल अधिकारों के अध्याय में एक अतिरिक्त अनुच्छेद को जोड़ने की सिफारिश की है।

3.5 आयोग की रिपोर्ट के सुसंगत भाग में निम्नलिखित उल्लेख किया गया है:-

**“3.9 यातना और अमानवीय, अपमानजनक और क्रूरतापूर्ण व्यवहार और दंडादेश के विरुद्ध अधिकार।**

3.9 यातना और अमानवीय, अपमानजनक और क्रूरतापूर्ण व्यवहार और दंडादेश से मानव गरिमा का घोर अतिक्रमण होता है। उच्चतम न्यायालय ने प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण पर विचार करते समय अनुच्छेद 21 के निर्वचन के द्वारा यातना आदि के विरुद्ध एक अधिकार की विवक्षा की है। मानव अधिकार की सार्वभौमिक घोषणा 1948 और आईसीसीपीआर ने क्रमशः अनुच्छेद 5 और 7 में ऐसे कृत्यों को प्रतिषिद्ध किया है।

इसलिए यह सिफारिश की जाती है कि, विद्यमान अनुच्छेद को इसके खंड(1) के रूप में संख्यांकित किया जाए और इसके पश्चात् निम्नलिखित एक नया खंड अन्तः स्थापित किया जाए-

“(2) कोई भी व्यक्ति यातना या क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंडादेश के अध्वधीन नहीं होगा”।

## **ख. भारत के विधि आयोग की रिपोर्टें**

### **(i) 113वीं रिपोर्ट (1985): पुलिस अभिरक्षा में क्षति**

3.6 113वीं रिपोर्ट में विधि आयोग धारा 114ख को अन्तः स्थापित करके भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 में संशोधन करने की सिफारिश की है जिसमें यह उपबंध किया गया है कि पुलिस अभिरक्षा में पहुंची क्षतियों की दशा में यदि यह साक्ष्य है कि क्षति उस अवधि के दौरान कारित की गई थी जब वह व्यक्ति पुलिस अभिरक्षा में था तो न्यायालय यह उपधारणा कर सकता है कि उस पुलिस अधिकारी ने क्षति कारित की है जिसको अभिरक्षा में वह व्यक्ति इस अवधि के दौरान था। इसके विपरीत साबित करने का भार पुलिस प्राधिकारियों पर है। अभिरक्षा में हुए अपराधों की दशा में संकीर्ण तकनीकी दृष्टिकोण को अपनाने की बजाए विधि की दृष्टि से यह आवश्यक है वास्तविक दृष्टिकोण को अंगीकृत किया जाए। आयोग द्वारा प्रस्तावित संशोधन निम्नलिखित है:

“114-ख (1) किसी व्यक्ति को क्षति कारित किए गए, अभिकथित कार्य द्वारा होने वाले अपराध के लिए (पुलिस अधिकारी के) अभियोजन में यदि यह साक्ष्य है कि क्षति उस अवधि के दौरान कारित की गई थी जब वह व्यक्ति पुलिस की अभिरक्षा में था तो न्यायालय यह उपधारणा कर सकता है कि उस पुलिस अधिकारी ने क्षति कारित की थी जिसकी अभिरक्षा में वह व्यक्ति उस अवधि के दौरान था।

- (2) न्यायालय यह विनिश्चय करने में कि उसे उपधारा (1) के अधीन उपधारणा करनी चाहिए या नहीं सभी सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखेगा जिनके अन्तर्गत विशेषकर है,
- (क) अभिरक्षा की अवधि,
  - (ख) क्षतिग्रस्त व्यक्ति द्वारा कोई ऐसा कथन कि उसे किस तरह से क्षति पहुंची थी वह कथन ऐसा हो जो साक्ष्य में ग्राह्य हो;
  - (ग) उस चिकित्सा व्यवसायी का साक्ष्य जिसने क्षतिग्रस्त व्यक्ति का उपचार किया हो, और
  - (घ) किसी ऐसे मजिस्ट्रेट का साक्ष्य जिसने क्षतिग्रस्त व्यक्ति का कथन अभिलिखित किया हो या अभिलिखित करने का प्रयास किया हो”।

**(ii) अभिरक्षान्तर्गत अपराध संबंधी: 152वीं रिपोर्ट (1994)**

3.7 आयोग ने कर्मचारियों द्वारा गिरफ्तार और प्राधिकार के दुरुपयोग से संबंधित विवादों पर विचार किया और सभी संवैधानिक और कानूनी उपबंधों, जिनके अन्तर्गत अनुच्छेद 20, 21 और 22 भी हैं, को निर्दिष्ट किया जिनका अनिवार्य रूप से पालन करने के लिए वे आबद्ध हैं क्योंकि इनमें व्यक्तियों के प्राण और देहिक स्वतंत्रता के संबंध में विचार किया गया है। इस रिपोर्ट में भारतीय दंड संहिता, 1860 के उपबंधों पर विचार किया गया है विशिष्ट रूप से धारा 166 और 167 (लोक अधिकारी द्वारा विधि के निदेशों की अवज्ञा करना), धारा 220 (भ्रष्टापूर्वक या विद्वेषपूर्ण विचारण के लिए किसी व्यक्ति को परिरोध में रखना), धारा 330 और 331 (अवैध परिरोध और शरीर को उपहति कारित करना), धारा 340-348 (सदोष परिरोध और सदोष अवरोध), धारा 376(2) (पुलिस अधिकारी आदि द्वारा अपवर्धित बलात्संग), धारा 376 ख से धारा 376 घ (अभिरक्षान्तर्गत लैंगिक अपराध), और धारा 503 और 506 (आपराधिक अभिवास)। आयोग ने दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों पर विचार किया विशेष रूप से धारा 41 (गिरफ्तारी), धारा 49 (अवरोध), धारा 50 (गिरफ्तारी) के आधार, धारा 53 (अभियुक्त की चिकित्सा परीक्षा, धारा 54 (गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के अनुरोध पर चिकित्सा परीक्षा), धारा 75-76 (वारंट के अधीन गिरफ्तार), धारा 154 (संज्ञेय मामलों में जानकारी), धारा 163 (उत्प्रेरणा के उपबंध), धारा 164

(मजिस्ट्रेट के समक्ष संस्वीकृति), धारा 313 (न्यायालय में अभियुक्त की परीक्षा), धारा 357 (प्रतिकर)।

3.8 आयोग ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के विभिन्न उपबंधों पर भी विचार किया उदाहरणार्थ धारा 24-27 । आयोग की मुख्य सिफारिश के अन्तर्गत दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 160 का अतिक्रमण करने के लिए दंड देने के नए उपबंध को अन्तः स्थापित करके भारतीय दंड संहिता का संशोधन करना है। आयोग ने गिरफ्तारी के कारणों को अभिलिखित करने के लिए धारा 41 (1क) को और संबंधियों आदि को सूचना देने से संबंधित धारा 50क को जोड़कर दंड प्रक्रिया संहिता में भी संशोधन करने की सिफारिश की है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम की बाबत आयोग ने नए उपबंध अर्थात् धारा 114ख, जिसके संबंध में 113वीं रिपोर्ट में सिफारिश की गई है, जोड़े जाने को फिर से दोहराया है।

**(iii) “गिरफ्तारी संबंधी विधि पर” विधि आयोग (2001) की 177वीं रिपोर्ट**

3.9 भारत के विधि आयोग ने अपनी 177वीं रिपोर्ट में दंड प्रक्रिया संहिता में, धारा 55क अन्तः स्थापित करके, संशोधन करने का सुझाव दिया है जो कि निम्नलिखित है:

“गिरफ्तार किए गए व्यक्ति का स्वास्थ्य और सुरक्षा: जिस व्यक्ति ने किसी अभियुक्त को अभिरक्षा में लिया है उसका यह कर्तव्य होगा कि वह उसके स्वास्थ्य की युक्तियुक्त देखरेख और सुरक्षा करे।”

**(iv) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 का पुनर्विलोकन- विधि आयोग की 185वीं रिपोर्ट (2003)**

3.10 आयोग की 185वीं रिपोर्ट में यह इंगित किया गया है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा मध्य प्रदेश राज्य बनाम श्याम सुन्दर त्रिवेदी<sup>66</sup> ने विधि आयोग की 113वीं रिपोर्ट को वास्तव में निर्दिष्ट किया है। यह इंगित किया गया था कि अभिरक्षा मृत्यु या

---

<sup>66</sup>1995 (4) एससीसी 262

पुलिस यातना के मामले में पुलिस की सह-अपरधिता के प्रत्यक्ष साक्ष्य की प्रत्याशा करना कठिन है। पुलिस वाले अपने भाईचारे के बन्धनों से बंधे होते हैं और वे अपने साथी के विरुद्ध साक्ष्य नहीं देंगे और अक्सर पुलिस कर्मचारी साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए सामने नहीं आते हैं और अधिकतर ऐसा होता है जैसा कि इस मामले में हुआ है। पुलिस अधिकारियों ने मामले के बारे में बिल्कुल अनभिज्ञता प्रकट करते हुए बहाना बनाया है। न्यायालयों को ऐसे मामले में युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत को साबित करने के लिए जोर नहीं देना चाहिए। अभियोजन पक्ष के पास पुलिस को अपराध में फंसाने के लिए कोई साक्ष्य बड़ी मुश्किल से उपलब्ध होगा। न्यायालय ने पुलिस अभिरक्षा में “विधि द्वारा शासित सामाजिक सोसाइटी में सबसे निकृष्ट प्रकार के अपराध है। खाकी वर्दी वाले विधि से ऊपर नहीं हैं”। दंड संहिता की धारा 330 और 331 ने ऐसे व्यक्तियों के लिए दंडनीय बनाया है जो संस्वीकृति जबरदस्ती हासिल करने के लिए उपहति कारित करने के लिए दंडनीय अपराध के लिए 10 वर्ष के कारावास का दंडादेश दिया जाता है किन्तु ऐसे मामलों में दोषसिद्धि बहुत कम मामलों में होती है क्योंकि साक्ष्य को साबित करने में बहुत कठिनाई होती है। न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया:

“इस स्थिति से क्षुब्ध होकर विधि आयोग ने अपनी 113वीं रिपोर्ट में भारतीय साक्ष्य अधिनियम में संशोधन करने की सिफारिश की है जिससे यह उपबंध किया जा सके कि पुलिस अभिरक्षा में रहते हुए यदि किसी व्यक्ति को शारीरिक क्षतियां कारित करने का अभिकथित अपराध के लिए किसी पुलिस अधिकारी के अभियोजन में यदि ऐसा कोई साक्ष्य है कि क्षतियां उस अवधि के दौरान कारित हुई थी जिस समय वह व्यक्ति पुलिस अभिरक्षा में था तब न्यायालय यह उपधारणा कर सकेगा कि क्षति उस पुलिस अधिकारी ने उस समय कारित थी जिस समयावधि के दौरान वह उसकी अभिरक्षा में था जब तक कि पुलिस अधिकारी इसके विपरीत साबित नहीं करता है। इसके विपरीत साबित करने का भार संबंधित पुलिस कर्मचारी पर होगा।

3.11 न्यायालय ने आगे यह और मत व्यक्त किया:

“अपराध के अमानवीय पहलू को ध्यान में रखते हुए, अपराध के पीड़ित के मूल अधिकारों का सुस्पष्ट अतिक्रमण इस प्रकार के बढ़ते हुए अपराध जहां कुछ ही अपराध प्रकाश में आते हैं अन्य नहीं इसलिए न्यायालय यह आशा करता है कि सरकार और विधानमंडल विधि आयोग की इन सिफारिशों पर गंभीरतापूर्वक विचार करेगा और विधि में समुचित परिवर्तन किए जाए.....”।

**(v) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में जमानत से संबंधित उपबंधों का संशोधन की 268 की रिपोर्ट (2017)**

3.12 आयोग ने अपनी 268वीं रिपोर्ट में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41(1क) का अन्तः स्थापन और 41 ख का संशोधन सिफारिश की है जिसमें यह अपेक्षा की गई है कि पुलिस अधिकारी द्वारा, जमानत के संबंध में गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों के अधिकारों के बारे में सूचित किया जाए और जमानत की प्रक्रिया को उदार बनाया जाए।

**ग. राष्ट्रीय पुलिस आयोग की चौथी रिपोर्ट (1980)**

3.13 राष्ट्रीय पुलिस आयोग ने अपनी चौथी रिपोर्ट (1980) में इस तथ्य पर विचार किया कि अभिरक्षा में यातना देना अभिभावी है और यह स्वीकार किया गया है कि पुलिस अभिरक्षा में किसी व्यक्ति को यातना पहुंचाना बहुत अमानवीय है। जनता की राय में पुलिस की छवि अच्छी नहीं है। सरल उपाय के रूप में तुरंत परिणाम हासिल करने के लिए पुलिस यातना की प्रक्रिया को अपनाती है। भारतीय दंड संहिता की धारा 330-331 के अधीन उपहति कारित करना एक दंडनीय अपराध है किन्तु पुलिस थाने की चारदीवारी के अन्दर अत्याचार किया जाता है उसके संबंध में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं होता है और इसके परिणामस्वरूप पुलिस द्वारा पहुंचाई गई यातना के लिए यदाकदा दोषसिद्धि हो पाती है। यह पता लगाना मुश्किल है कि अपराधी कौन था।



3.14 इस प्रकार यह स्पष्ट है कि काफी समय से विभिन्न आयोगों ने अपनी रिपोर्टों में सतत रूप से यह सिफारिश की है कि हमारे संविधान में यथा-उपबंधित किसी व्यक्ति को उसके प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के अधिकारों से संरक्षण देने के लिए हमारे कानूनों में पर्याप्त उपबंध किए गए हैं। उपर्युक्त विश्लेषण से आयोग अपने निष्कर्षों और सिफारिशों पर दृढ़ है।

## अध्याय-4

### संवैधानिक/कानूनी उपबंध

#### क. संवैधानिक उपबंध

4.1 अनुच्छेद 20(3) में यह उपबंध किया गया है कि किसी अपराध के लिए अभियुक्त किसी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। अभियुक्त के पास चुप रहने का और विचारण के समक्ष अपनी प्रतिरक्षा को प्रकट न करने का अधिकार है<sup>67</sup>। पाल्मिग्राफ और ब्रेन फिंगर प्रिंटिंग परीक्षण को परिसाक्ष्य बाध्यता अभिनिर्धारित किया गया है और इस प्रकार इसे अनुच्छेद 20(3)<sup>68</sup> द्वारा वर्जित अभिनिर्धारित किया गया है। भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27 के अधीन बरामदगियों को यातना<sup>69</sup> के माध्यम से उपाप्त करने को अनुज्ञात नहीं किया गया है।

4.2 अनुच्छेद 21 में यह उपबंध किया गया है कि किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं। उच्चतम न्यायालय ने निरंतर रूप से अभिनिर्धारित किया है कि अभिरक्षा में यातना देने से संविधान के अनुच्छेद 21 उपबंधित प्राण के अधिकार का अतिक्रमण होता है। यह सुस्थापित विधिक प्रतिपादन है कि अनुच्छेद 21, अनुच्छेद 20 में अधिकथित विभिन्न अपेक्षाओं का, अनुपुरक भी हो सकता है।<sup>70</sup>

---

<sup>67</sup>योगेन्द्र कुमार जायसवाल ब. बिहार राज्य और अन्य, ए.आई.आर. 2016 एससी 1474

<sup>68</sup>श्रीमती सेल्वी ब. कर्नाटक राज्य एआईआर 2010 एससी 1974, नारायणलाल बंसीलाल ब. मानेक फिरोज मिस्त्री, एआईआर 1961 एससी 29; और चरोरिया ब. महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1968 एससी 938 वाले मामले भी देखें।

<sup>69</sup>बोम्बे राज्य ब. काथी कालू ओघाड, एआईआर 1961 एससी 1808; और श्रीमती सेल्वी और अन्य ब. कर्नाटक राज्य, एआईआर 2010 एससी 1974

<sup>70</sup>संपत प्रकाश ब. जम्मू कश्मीर राज्य, 1969 एससी. 1153 और कमला कन्हैयालाल खुशलानी ब. महा.राज्य एआईआर 1981 एससी 814

4.3 सुनील बतरा बनाम दिल्ली प्रशासन,<sup>71</sup> वाले में मामले में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से इन शब्दों में यह अभिनिर्धारित किया है कि “जैसे ही कोई व्यक्ति कारागार में प्रवेश करता है वैसे ही उसके मूल अधिकार समाप्त नहीं होते हैं यद्यपि बन्दी बनने के कारण आवश्यक रूप से उनमें कमी आ जाती है।”

4.4 अनुच्छेद 22(1) और (2) में यह उपबंध किया गया है कि कुछ दशाओं में गिरफ्तार और निरोध से संरक्षण। यदि किसी व्यक्ति को जो गिरफ्तार किया गया है तो ऐसी गिरफ्तारी के कारणों से यथाशीघ्र अवगत कराए बिना अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं रखा जाएगा या अपनी रुचि के विधि व्यवसायी से परामर्श करने और प्रतिरक्षा कराने के अधिकार से वंचित नहीं रखा जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति को जो गिरफ्तार किया गया है ..... गिरफ्तारी से चौबीस घंटे की अवधि में निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाएगा और ऐसे व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के प्राधिकार के बिना उक्त अवधि से अधिक अवधि के लिए अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं रखा जाएगा”।

4.5 इसी प्रकार किसी दांडिक विचारण में न केवल किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वतंत्रता से अपितु प्राण का उसका अधिकार पक्षपातपूर्ण नहीं होना चाहिए और अभियुक्त के विरुद्ध कोई पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए<sup>72</sup>। यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि कोई दंडादेश अधिक क्रूरतापूर्ण या यातनाजनक है तो वह असंवैधानिक है।<sup>73</sup>

4.6 अनुच्छेद 22 (1)<sup>74</sup> के अधीन गिरफ्तारी के आधारों के बारे में जानकारी देना अनिवार्य है। अपनी रुचि के विधि व्यवसायी से परामर्श करने का अधिकार भी अनिवार्य है।<sup>75</sup> इसके अलावा अभियुक्त को निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करना एक अनिवार्य संवैधानिक अपेक्षा है।<sup>76</sup>

---

<sup>71</sup> एआईआर 1978 एससी 1675, सुनील बतरा ब. दिल्ली प्रशा. एआईआर 1980 एससी 1579; और इनह्यूमन कंडीशन इन 1382 प्रिजन एआईआर 2016 एससीसी 993

<sup>72</sup> नाहर सिंह यादव ब. यूनियन आफ इंडिया, एआईआर 2011 एससी 1549

<sup>73</sup> इंद्रजीत ब. उत्तर प्रदेश राज्य एआईआर 1979 एससी 1867

<sup>74</sup> ए के गोपालन ब. मद्रास राज्य, एआईआर 1950 एससी 27; और हंसमुख ब. स्टेट आफ गुजरात, एआईआर 1981 एससी 28

<sup>75</sup> ए के गोपालन उपरोक्त, और मध्य प्रदेश राज्य ब. शोभाराम एआईआर 1966 एससी 1910

<sup>76</sup> उत्तर प्रदेश राज्य ब. अब्दुल समाद, एआईआर 1962 एससी 1506

## ख. कानूनी उपबंध

(i) भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872

4.7 धारा 24 में यह उपबंध किया गया है कि यदि किसी अभियुक्त से कोई संस्वीकृति उत्प्रेरणा, धमकी या वचन द्वारा अभिप्राप्त की गई है जिससे किसी बुराई का परिमर्जन किया जा सके वह दांडिक कार्यवाहियों में सुसंगत नहीं होगी। किसी दांडिक विचारण में किसी अभियुक्त द्वारा की गई संस्वीकृति असंगत हो जाती है यदि न्यायालय की यह राय है कि इससे उत्प्रेरणा, धमकी या वचन द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध आरोप के प्रति निर्देश करते हुए ऐसी संस्वीकृति की गई है।

4.8 धारा 25 में यह उपबंध किया गया है कि किसी पुलिस अधिकारी को किया गया किसी अभियुक्त का संस्वीकृति कथन साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है और दोषसिद्धि अभिप्राप्त करने के लिए अभियोजन द्वारा ऐसी संस्वीकृति को अभिलेख पर नहीं लाया जा सकता है<sup>77</sup>। अघनू नागेशिया बनाम बिहार राज्य<sup>78</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि “यदि किसी पुलिस अधिकारी को अभियुक्त द्वारा प्रथम इतिला रिपोर्ट दी गई है वह किसी संस्वीकृति कथन की कोटि में नहीं आती है क्योंकि धारा 25 द्वारा संस्वीकृति का सबूत प्रतिषिद्ध है”।

4.9 धारा 26 में यह उपबंध किया गया है कि पुलिस अभिरक्षा के दौरान किसी अभियुक्त द्वारा की गई संस्वीकृति को उसके विरुद्ध साबित नहीं किया जा सकता है। वास्तव में पुलिस अभिरक्षा में किया गया कथन तब तक अविश्वसनीय रहता है जब तब उसकी प्रति परीक्षा या न्यायिक संवीक्षा<sup>79</sup> नहीं की जाती है।

4.10 धारा 27 में यह उपबंध किया गया है कि किसी अभियुक्त से प्राप्त कितनी जानकारी को साबित किया जा सकता है। धारा 27 को लागू करने के लिए यह अपेक्षित है कि अभियुक्त के कथन को इसके संघटकों में विभाजित किया जाए और ग्राह्य भाग को अलग किया जाए। केवल वे भाग जिनके संबंध में तुरंत अन्वेषण किया

<sup>77</sup>राम सिंह ब. केन्द्रीय स्वापक ब्यूरो, एआईआर 2011 एसी 2490

<sup>78</sup>एआईआर 1966 एससी 119

<sup>79</sup>श्रीमती सेल्वी ब. कर्नाटक राज्य (रूपर का टिप्पण 54)

जाना है वे साक्ष्य में ग्राह्य होंगे<sup>80</sup>। काथी लालू ओघाड<sup>81</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:

“किसी पुलिस अधिकारी की अभिरक्षा में किसी अभियुक्त व्यक्ति से जानकारी प्राप्त करने के लिए विवश करना तथापि, अर्न्तनिर्हित नहीं है। ऐसे कई मामले हो सकते हैं जहां अभिरक्षा में किसी अभियुक्त को जानकारी देने के लिए बाध्य किया जाता है किन्तु बाद में धारा 27 के अधीन उसे साबित करने की ईप्सा की जाती है। ऐसे भी कई अन्य मामले हो सकते हैं जहां अभियुक्त ने किसी विवशता के बिना जानकारी दी हो। जहां अभियुक्त को जानकारी देने के लिए विवश किया गया है वहां अनुच्छेद 20(3) का अतिलंघन होता है किन्तु यदि बिना किसी विवशता के वह जानकारी देता है तब ऐसा अतिलंघन नहीं होता है। इसलिए, अभिरक्षा में अभियुक्त से प्राप्त जानकारी के तथ्य में विवशता अर्न्तनिर्हित या विवक्षित नहीं है, इसलिए इस दलील को स्वीकार नहीं किया जा सकता है कि आवश्यक रूप से इस अनुच्छेद 20(3) का अतिलंघन होता है।”

4.11 धारा 132 में यह उपबंध किया गया है कि साक्षी इस आधार पर क्षम्य नहीं होगा कि ऐसे प्रश्न का उत्तर ऐसे साक्षी को अपराध में फंसाएगा। तथापि, इसका परन्तुक निम्नलिखित है:

“परन्तु ऐसा कोई भी उत्तर जिसे देने के लिए कोई साक्षी विवश किया जाएगा उसे गिरफ्तारी या अभियोजन के अध्यधीन नहीं करेगा और न ऐसे उत्तर द्वारा मिथ्या साक्ष्य देने के लिए अभियोजन में के सिवाय वह उसके विरुद्ध किसी दांडिक कार्यवाही में साबित किया जाएगा”।

4.12 आर. दिनेश कुमार ब. उड़ीसा राज्य<sup>82</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने साक्ष्य अधिनियम की धारा 132 के परन्तुक पर विचार करते हुए इसके विस्तार को

<sup>80</sup>मोहम्मद इनायतुल्लाह ब. महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 1976 एससी 480

<sup>81</sup>ऊपर का टिप्पण 54

<sup>82</sup>एआईआर 2015 एससी 1816

स्पष्ट किया है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) के अधीन उपबंधित सिद्धांत, जो यह मूल अधिकार प्रदत्त करता है कि “किसी अपराध के लिए अभियुक्त किसी व्यक्ति को अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा” का साक्ष्य अधिनियम एक आवश्यक परिणाम है। यद्यपि, ऐसा कोई मूल अधिकार केवल ऐसे व्यक्ति को उपलब्ध है जो किसी अपराध का अभियुक्त है, साक्ष्य अधिनियम की धारा 132 का परन्तु एक ऐसे साक्षी के पक्ष में, जो किसी वाद या किसी सिविल या दांडिक कार्यवाही में साक्ष्य देने की प्रक्रिया में उसे अपराध में फंसाने वाले कथन, उन्मुक्ति सृजित करता है, इस संबंध में अधिक उदारतापूर्वक निर्वचन करने की आवश्यकता है। ऐसी उन्मुक्ति के बिना, कोई साक्षी जो न्यायालय के समक्ष साक्ष्य दे रहा है न्यायालय उसके साक्ष्य के आधार पर न्यायोचित निष्कर्ष पर पहुंचने में समर्थ हो सकेगा (और इस प्रकार वह न्याय की प्रक्रिया की सहायता करेगा) अन्यथा किसी दांडिक मामले में किसी अभियुक्त के मुकाबले बुरी स्थिति में होगा। इसलिए, किसी न्यायालय के समक्ष “साक्षी” के रूप में अभिसाक्ष्य देते हुए किसी व्यक्ति द्वारा दिए गए उत्तर के आधार पर साक्ष्य अधिनियम की धारा 132 के अन्तर्गत आने वाले किसी कथन को करने वाले के विरुद्ध अभियोजन आरंभ नहीं किया जा सकता है।

(ii) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

4.13 धारा 46(3) और 49 गिरफ्तार किए जाने वाले ऐसे व्यक्ति और पुलिस अभिरक्षा के अधीन ऐसे निरुद्ध व्यक्ति को संरक्षण देती है, जिस पर मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध का अभियोग नहीं है। गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उससे अधिक अवरुद्ध न किया जाएगा जितना उसके निकल भागने से रोकने के लिए आवश्यक है।

4.14 धारा 50 और 56 संविधान के अनुच्छेद 22 के अनुरूप और अनुकूल हैं। गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को गिरफ्तारी के आधारों और जमानत के अधिकार के संबंध में जानकारी दी जाएगी। इसके अतिरिक्त उसे नियत समय के भीतर मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाएगा।

4.15 धारा 51(2) और 100(3) में यह उपबंध किया गया है कि जब किसी स्त्री की तलाशी करना आवश्यक हो तब ऐसी तलाशी शिष्टता का पूरा ध्यान रखते हुए अन्य स्त्री द्वारा की जाएगी। स्त्री अभियुक्त से उसके निवास स्थान पर ही पूछताछ की जाएगी।

4.16 संहिता की धारा 54 अभिरक्षा में गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को यातना पहुंचाई जाती है या हिंसा की जाती है इससे रक्षोपाय के विस्तार के रूप में यह उपबंध किया गया है कि चिकित्सा अधिकारी द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की परीक्षा की जाएगी। धारा 57 में यह अपेक्षा की गई है कि पुलिस संदिग्ध/अभियुक्त को गिरफ्तार के 24 घंटों के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश करेगा। यह संविधान के अनुच्छेद 22(2) के तत्समान है।

4.17 धारा 132 और 197 (1) यदि अपने शासकीय कर्तव्य का निर्वहन करते हुए किसी लोक सेवक द्वारा कोई अभिकथित अपराध कारित करने का अभियुक्त है तब ऐसे लोक सेवक को अभियोजन से उन्मुक्ति दी गई है।

4.18 धारा 160(1) यह उपबंध करती है कि “किसी पुरुष से जो पंद्रह वर्ष से कम आयु का है या किसी स्त्री से ऐसे स्थान से, जिसमें ऐसा पुरुष या स्त्री निवास करती है, भिन्न किसी स्थान पर हाजिर होने की अपेक्षा नहीं की जाएगी”।

4.19 धारा 162, 163(1) और 215 (i) संस्वीकृति और (ii) परिसाक्ष्य करने के लिए मजबूर करने को अननुज्ञात करती हैं, और न्यायालय में ऐसी संस्वीकृति और परिसाक्ष्य अग्राह्य है और ऐसी संस्वीकृति के विरुद्ध अभियुक्त का संरक्षण करती हैं।

4.20 धारा 167 अभियुक्त व्यक्ति के अधिकारों और हित के रक्षोपाय के लिए उन्हें न्यायालय के समक्ष पेश करने की बाध्यता को अधिरोपित करती है।

4.21 धारा 176 में पुलिस अभिरक्षा में अभियुक्त के मर जाने पर मजिस्ट्रेट द्वारा अनिवार्य रूप जांच करने का उपबंध किया गया है।

4.22 धारा 357क में यह उपबंध किया गया है कि प्रत्येक राज्य सरकार केन्द्रीय सरकार के सहयोग से पीड़ित प्रतिकर स्कीम विरचित करेगी।

4.23 धारा 357ख में प्रतिकर देने के संबंध में उपबंध किया गया है कि यह धारा 326 क या धारा 376घ के अधीन जुर्माने का संदाय किए जाने के अतिरिक्त होगा।

4.24 धारा 357ग में यह उपबंध किया गया है कि बलात्संग की पीड़िता के लिए सभी लोक या प्राइवेट अस्पताल चाहे वे केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, स्थानीय निकायों या अन्य व्यक्तियों द्वारा चलाए जा रहा है, उपचार किया जाएगा।

4.25 धारा 358 में यह उपबंध किया गया है कि ऐसे व्यक्तियों को प्रतिकर का संदाय किया जाएगा जिन्हें आधारहीन आधारों पर गिरफ्तार किया गया हो।

(iii) भारतीय पुलिस अधिनियम, 1860

4.26 धारा 7 और 29 में यह उपबंध किया गया है कि ऐसे पुलिस अधिकारी जो अपने कर्तव्यों के निर्वहन में उपेक्षा करते हैं या इसका निष्पादन करने के लिए अयोग्य हैं उन्हें पदच्युत और अन्य शास्तियां अधिरोपित की जा सकती हैं।

(iv) भारतीय दंड संहिता, 1860

4.27 धारा 330, 331, 342 और 348 को, ऐसा पुलिस अधिकारी, जो किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने और किसी अपराध का अन्वेषण करने के दौरान पूछताछ करने के लिए सशक्त है वह अधिक कठोर प्रणाली का उपयोग, जो यातना<sup>83</sup> की श्रेणी में आता है, को भयोपरत करने के लिए प्रयोजनार्थ अधिनियमित किया गया है।

4.28 धारा 376(1) (ख) में यदि पुलिस अधिकारी द्वारा अभिरक्षा में की स्त्री के साथ बलात्संग किया जाता है इसके लिए कठोर शास्ति का उपबंध किया गया है।

---

<sup>83</sup>मध्य प्रदेश राज्य बनाम श्याम सुन्दर त्रिवेदी (1995)4 एससीसी 260



4.29 धारा 376 में प्राधिकार में के किसी व्यक्ति द्वारा मैथुन करने के लिए शास्ति का उपबंध किया गया है।

(v) सशस्त्र बल विशेष शक्ति अधिनियम, 1983

4.30 इस अधिनियम की धारा 6 में प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति के सिद्धांत को सृजित किया गया है क्योंकि इसके अधीन सुरक्षा बलों को अभिकथित अपराधों के विरुद्ध संरक्षण प्राप्त है।

4.31 इसमें ऊपर निर्दिष्ट विभिन्न कानूनों के विद्यमान उपबंधों के अधीन आयोग ने यह सिफारिश करने का निश्चय किया कि धारा 357ख में संशोधन करने की आवश्यकता है जिससे कि भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 326क या धारा 376घ के अधीन यथाउपबंधित जुर्माने का संदाय करने के अतिरिक्त, यातना के मामले में भी प्रतिकर का संदाय करने के उपबंध को सम्मिलित किया जा सके। इसी प्रकार आयोग की यह राय है कि राज्य की यह जिम्मेदारी होगी कि वह अभिरक्षा के दौरान किसी व्यक्ति को पहुंची क्षतियों के संबंध में स्पष्ट करे। इसलिए यह सिफारिश की गई है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में संशोधन करके विधेयक के अनुसार धारा 114ख अन्तःस्थापित की जाए। तारीख 10 मार्च, 2017 को राज्य सभा में भारतीय साक्ष्य (संशोधन) विधेयक 2016 (2016 का विधेयक सं. LXVII) पुरः स्थापित किया गया है।

## अध्याय-5

### अभिरक्षा में हुई मृत्यु और हिंसा के संबंध में न्यायिक प्रतिक्रिया

5.1 फर्जी मुठभेड़, अवैध, अन्यायपूर्ण और किसी विधिमान्य आधार के बिना अनावश्यक गिरफ्तारी, अभिरक्षा में हिंसा करके ऐसे निर्दोष व्यक्तियों से ऐसे अपराधों के लिए जो उन्होंने कारित ही नहीं किए हैं, संस्वीकृति प्राप्त करने से संबंधित विवाद्यक सदैव भारतीय न्यायालयों द्वारा विचार करने के विषय रहे हैं।

#### क. अभिरक्षा का अर्थान्वयन

5.2 किसी भी कानून में “अभिरक्षा” पद को परिभाषित नहीं किया गया है। इसके शब्दाकोषीय अर्थ के अन्तर्गत, सुरक्षित रखना, संरक्षण, आरोप, देखरेख, संरक्षक, हिरासत, हवालात, कारावास, रखवाली और परिक्षण करने का कृत्य या कर्तव्य, किसी वस्तु या व्यक्ति पर नियंत्रण करना है।<sup>84</sup>

5.3 ब्लैक लॉ डिक्शनरी<sup>85</sup> में “अभिरक्षा” अभिव्यक्ति को बहुत लचीले पद के रूप में स्पष्ट किया गया है और इससे अभिप्रेत है वास्तविक कारावास या शारीरिक निरोध और आवश्यक रूप से इसका अर्थ जेल या कारागार में निरोध नहीं है अपितु यह स्वतंत्रता को अवरुद्ध करने का पर्यायवाची है।

5.4 निरंजन सिंह बनाम प्रभाकर राजाराम खारोटे<sup>86</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के कार्यक्षेत्र के भीतर “अभिरक्षा” शब्द का अर्थान्वयन करने समय, निम्नलिखित मत व्यक्त किया है:

“जब कोई व्यक्ति कारावास में या तो उसे अन्वेषण अभिकरण या अन्य पुलिस या संबद्ध प्राधिकारी द्वारा पकड़ा गया हो या न्यायालय के नियंत्रणाधीन है और न्यायिक आदेश द्वारा प्रतिप्रेषित किया गया है या

<sup>84</sup>शार्टर आक्सफोर्ड लॉ डिक्शनरी और वेबसाइट की तीसरी अन्तरराष्ट्रीय शब्दकोश

<sup>85</sup>हेनरी केम्बेल ब्लैक, एम ए (छठा संस्करण)

<sup>86</sup>ए.आई.आर. 1980 एससी 785; देखें सुनीता देवी ब. बिहार राज्य, एआईआर 2005 एससी 498

उसने स्वयं को न्यायिक आधिकारिता के सुपुर्द कर दिया है और इसके आदेशों के अधीन शारीरिक रूप से हाजिर हो गया है। इस वास्तविक निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए किसी शब्दकोश की और न ही किसी पूर्ववर्ती उदारता की आवश्यकता नहीं है कि यदि कोई व्यक्ति न्यायालय के नियंत्रणाधीन या अभिरक्षा में प्रपीड़क किसी अधिकारी ने पकड़ा हुआ है .....यह शब्द बहुत लचीला है किन्तु इसका मुख्य अर्थ यह है कि विधि के अनुसार किसी व्यक्ति पर नियंत्रण किया गया है। न्यायालय में कभी कभी यह दलील दी जाती है कि पुलिस ने किसी व्यक्ति को अनौपचारिक रूप से अभिरक्षा में लिया है किन्तु उसे गिरफ्तार नहीं किया है किन्तु उसे पूछताछ करने के लिए निरुद्ध किया गया है किन्तु औपचारिक अभिरक्षा में गिरफ्तार नहीं किया गया है और अन्य पारिभाषिक अनिश्चितता की तरह है जो विधि की सुस्पष्टता का अनुचित अवचन है।

5.5 अभिरक्षा पद के अर्थ को जिस संदर्भ में उसका उपयोग किया उसके प्रति निर्देश करके समझा जाना चाहिए।<sup>87</sup>

5.6 हरबंस सिंह बनाम राज्य<sup>88</sup> वाले मामले में मुंबई उच्च न्यायालय ने गिरफ्तारी और अभिरक्षा के बीच फर्क को स्पष्ट करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया है:

“गिरफ्तारी एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें किसी व्यक्ति को पुलिस अभिरक्षा में लिया जाता है, किन्तु अन्य तरीके से ऐसा व्यक्ति पुलिस अभिरक्षा में हो सकता है। गिरफ्तारी की कोटि में क्या आता है इस संबंध में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 46 के अभिव्यक्त निबंधनों में अधिकथित किया जबकि ‘अभिरक्षा में’ शब्द साक्ष्य अधिनियम की कतिपय धाराओं में पाए जाते हैं जो केवल संबंधित व्यक्ति के संचलन पर निगरानी या निर्बंधन का द्योतक है जो पूरा हो सकता है उदाहरणार्थ गिरफ्तार किए गए किसी

<sup>87</sup>रोशन बीबी बनाम संयुक्त सचिव, तमिलनाडु सरकार, 1984 (15) ईएलटी 289 (मद्रास)

<sup>88</sup>एआईआर 1970 मुंबई 79; पंजाब राज्य ब. अजायब सिंह, एआईआर 1953 एससी 10 वाला मामला भी देखें

व्यक्ति के मामले में आंशिक हो सकता है। इसलिए अभिरक्षा में रहने का सिद्धांत को औपचारिक रूप से गिरफ्तारी के सिद्धांत के समान नहीं माना जा सकता है और इन दोनों के बीच फर्क है। जहां सीमा-शुल्क प्राधिकारियों द्वारा कथन अभिलिखित करने के पश्चात् अभियुक्त को रात हो जाने के कारण मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश नहीं किया जा सका और अगले दिन सुबह उसे मजिस्ट्रेट के समक्ष करने के संबंध में यह नहीं कहा जा सकता है कि अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया था और इस प्रकार उसके द्वारा किए गए किसी कथन को साक्ष्य अधिनियम की धारा 24 का अतिक्रमण कहा जा सकता है.....।

5.7 प्रवर्तन निदेशालय बनाम दीपक महाजन<sup>89</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने “अभिरक्षा” और “गिरफ्तारी” के बीच फर्क करते हुए निम्नलिखित मत व्यक्त किया है:

“..... प्रत्येक गिरफ्तारी में, अभिरक्षा होती है किंतु ये विलोम शब्द हैं और ‘अभिरक्षा’ और ‘गिरफ्तारी’ पद पर्यायवाची पद नहीं हैं। यद्यपि कतिपय परिस्थितियों में कोई गिरफ्तारी की इस कोटि में आ सकती है किन्तु सभी परिस्थितियों के अधीन नहीं। यदि इन दोनों पदों का निर्वचन पर्यायवाची शब्दों के रूप में किया जाए तो यह अति विधिक निर्वचन के अतिरिक्त कुछ नहीं है और यदि सभी परिस्थितियों के अधीन इसे स्वीकार और अंगीकृत किया जाए तो इससे चौंकाने वाली विसंगति होगी जिसके गंभीर परिणाम होंगे, देखें (ऊपर) रोशन बीबी वाला मामला”

5.8 इस प्रकार ऊपर जो मत व्यक्त किया गया है उसको ध्यान में रखते हुए अभिरक्षा पद को प्रासांगिक निर्देश में समझा जाना चाहिए और किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करते हुए इसका यह अर्थ हो सकता है कि विधि का किसी व्यक्ति पर नियंत्रण है। इसका यह अर्थ भी हो सकता है कि किसी व्यक्ति के संचलन पर निगरानी या निर्वधन है। अभिरक्षा और गिरफ्तारी सदैव पर्यायवाची नहीं होते हैं।

---

<sup>89</sup>एआईआर 1994 एससी 1775; निर्मलजीत कौर बनाम मध्य प्रदेश राज्य (2004) 7 एससीसी 558 मामला भी देखें

## ख. न्यायिक प्रतिक्रिया

5.9 वर्ष 1961 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने पुलिस व्यवहार से संबंधित एक मामले में निम्नलिखित टिप्पणियां की थी:

‘पूरे देश में ऐसा कोई भी उत्पाती समूह नहीं है जिसका अपराध का अभिलेख संगठित इकाई, जिसे भारतीय पुलिस बल कहा जाता है, के अभिलेख के आसपास भी हो।’

..... जहां प्रत्येक मछली, कुछ बदबूदार मछलियों को छोड़कर, इनमें से एक या दो को उठाकर यह कहा जाए कि इनसे बदबू हो रही थी।

5.10 उत्तर प्रदेश राज्य ने इन टिप्पणियों को मिटाने के लिए उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक अपील फाइल की और अपील मंजूर की गई थी।<sup>90</sup>

5.11 पियोपिल्स यूनियन फार सिविल लिबर्टी बनाम भारत संघ और एक अन्य<sup>91</sup> वाले मामले में न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया:

“निस्संदेह, यह न्यायालय राज्य के पुलिस कार्मिकों द्वारा किए जाने वाले फर्जी मुठभेड़ और बलात्संग के अभिकथनों में अर्न्तग्रस्त एक के बाद एक याचिका को ग्रहण कर रहा है और बड़ी संख्या में इन मामलों को, अन्वेषण करने के लिए स्वयं अल्प अभिकरणों और विशेष रूप से केन्द्रीय जांच ब्यूरो की, आंतरित कर दिया जाता है।”

5.12 फ्रांसिस कोरालाई मुलिन बनाम प्रशासक, दिल्ली संघ राज्य क्षेत्र<sup>92</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया:

---

<sup>90</sup>उ.प्र. राज्य बनाम मोहम्मद नईम, एआईआर 1964 एससी 703

<sup>91</sup>एआईआर 2005 एससी 2419 (दिलीप के बासु ब. पश्चिमी बंगाल राज्य और अन्य, एआईआर 1997 एससी 3017 और एनसी डोनडियाल ब. भारत संघ और अन्य एआईआर 2004 एससी 127, रूआबीदीन शेख ब. गुजरात राज्य और अन्य एआईआर 2010 एससी 3175, जयवंत पी. संकपाल ब. सुमन घोलाप और अन्य एआईआर 2008; और नर्मदाबाई ब. गुजरात और अन्य (2011) 5 एससीसी 79 वाले मामले भी देखें।

<sup>92</sup>एआईआर 1981 एससी 746

“..... किसी भी रूप में यातना या क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार मानव गरिमा का उल्लंघन करता है और इससे प्राणों के अधिकार का अतिक्रमण होता है और इस मत को ध्यान में रखते हुए यह तब तक अनुच्छेद 21 द्वारा प्रतिषिद्ध है जब तक यह विधि द्वारा विहित प्रक्रिया के अनुसार है किन्तु ऐसी कोई विधि नहीं है जो ऐसी प्रक्रिया को प्राधिकृत करती हो जिससे ऐसी यातना या क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार किया जा सकता है और वह युक्तियुक्तता और गैर-मनमानोपन की कसौटी पर खरा उतरता हो: यह निश्चित रूप से असंवैधानिक है और इससे अनुच्छेद 14 और 21 का अतिक्रमण होता है।”

5.13 चरण लाल साहू बनाम भारत संघ<sup>93</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने संविधान 21, 48क और 51क (च) का निर्वचन किया था और निम्नलिखित मत व्यक्त किया था:

“मानव अधिकारों के हमारे राष्ट्रीय आयाम के संदर्भ में प्राण, स्वतंत्रता, प्रदूषण रहित वायु और जल के अधिकार की गारंटी संविधान द्वारा अनुच्छेद 21, 48क और 51क (च) के अधीन दी गई है, राज्य का यह कर्तव्य है कि वह गारन्टीकृत संवैधानिक अधिकारों का संरक्षण करने के लिए प्रभावी कदम उठाए”।

5.14 करतार सिंह बनाम पंजाब राज्य<sup>94</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है:

“..... नागरिकों की अर्न्तनिहित गरिमा और सम्मान तथा अन्य-असंक्राम्य अधिकारों की मान्यता संसार में स्वतंत्रता, न्याय और शान्ति

---

<sup>93</sup>एआईआर 1990 एससी 1480

<sup>94</sup>(1994) 3 एससीसी 569

का आधार है। यदि मानव अधिकारों को भंग किया जाता है तब न्यायालय अपनी प्रभुत्वसंपन्न न्यायिक प्राधिकार का प्रयोग करते हुए मानव अधिकारों के ऐसे अतिक्रमण के विरुद्ध कार्यवाही कर सकता है।”

5.15 भारत में पुलिस अत्याचार सदैव विवाद और बहस का विषय रहा है। इस संबंध में ब्यौरेवार पृथीपाल सिंह आदि बनाम पंजाब राज्य और एक अन्य आदि<sup>95</sup> वाले मामले में विचार-विमर्श किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 21 के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, किसी प्रकार की यातना या क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार निषेध है। अन्वेषण, पूछताछ या अन्यथा के दौरान की गई यातना अनुज्ञेय नहीं है। खंडन करने के लिए यह नहीं कहा जा सकता है कि किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता सदैव राज्य की सुरक्षा के आगे सदैव झुकती है। लेटिन सूत्र कि जनता की सुरक्षा सर्वोच्च विधि है, और राज्य की सुरक्षा सर्वोच्च विधि है, सह-अस्तित्व के लिए आवश्यक है।

5.16 प्राण के अधिकार को ठीक ही “सर्वोच्च” और “मौलिक” रूप से विशेष माना गया है; इसके अन्तर्गत राज्य के लिए तथाकथित नकारात्मक और सकारात्मक दोनों प्रकार की बाध्यताएं शामिल हैं। नकारात्मक बाध्यता से अभिप्रेत है प्राण के अधिकार पर मनमाने वंचन पर पूरी तरह से प्रतिषेध। इस संदर्भ में सकारात्मक बाध्यता के लिए राज्य के लिए यह अपेक्षित है कि उसके पास अपनी राज्यक्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर प्रत्येक व्यक्ति के प्राण के अधिकार का संरक्षण करने की बाध्यता है। इस बाध्यता के अधीन यह अपेक्षित है कि राज्य प्राण का संरक्षण और सभी सन्देहास्पद मृत्यु का अन्वेषण करने के लिए प्रशासनिक और अन्य उपाय करेगा।

5.17 राज्य यातना और बुरे बर्ताव के पीड़ितों का संरक्षण अवश्य करेगा। भीषण दवाब की समस्याएं और मानसिक दवाब के पश्चात् होने वाले विकार तथा कई अन्य मानसिक परिणामों को सही परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्यकता है। इसलिए राज्य को किसी व्यक्ति के साथ, विशेष रूप से किसी राज्य अभिकरण/पुलिस बल द्वारा की

---

<sup>95</sup>(2012) 1 एससीसी 10

गई, यातना, क्रूरतापूर्ण अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार के प्रतिषेध को सुनिश्चित करना चाहिए।

5.18 पुलिस के अत्याचारों को सहन करना, जानबूझकर किया गया विनाश और विधिसम्मत शासन के क्षरण को स्वीकार करने की कोटि के अन्तर्गत आते हैं। गंभीर प्रकृति के मामलों पर विचार करते हुए यह पाया गया है कि अवैध शासन दण्डभाव से घिरा हुआ है।

5.19 गौरी शंकर शर्मा आदि बनाम उ.प्र. राज्य<sup>96</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है:

“सामान्यता पुलिस अभिरक्षा में हुई मृत्यु के मामलों में अत्यधिक उत्पीड़ित करने वाले पुलिस वालों के विरुद्ध साक्ष्य प्राप्त करना मुश्किल होता है क्योंकि वे पुलिस थाने के अभिलेख के भारसाधक होते हैं और उनके लिए अभिलेख में हेराफेरी करना मुश्किल नहीं होता है, जैसा कि इस मामले में है। ....चूंकि यह गंभीर प्रकृति का अपराध है क्योंकि तथ्य यह है कि इस अपराध को एक ऐसे व्यक्ति द्वारा कारित किया गया है जिससे नागरिकों का संरक्षण करने की प्रत्याशा है न कि अपनी वर्दी और प्राधिकार का दुरुपयोग करके अपनी अभिरक्षा के दौरान उनकी बर्बरतापूर्ण रीति से पिटाई करने का । पुलिस अभिरक्षा में हुई मृत्यु के संबंध में गंभीर रूप से विचार करने की आवश्यकता है अन्यथा पुलिस राज स्थापित होने में हम सहायक हो जाएंगे। कड़ी कार्यवाही करके इसे अवश्य ही रोका जाना चाहिए। ऐसे मामलों में दंडादेश ऐसा होना चाहिए जिससे अन्य व्यक्ति ऐसा व्यवहार करने से डरे। ऐसे मामलों में सदयता बिल्कुल नहीं की जानी चाहिए।”

5.20 मुंशी सिंह गौतम बनाम म.प्र. राज्य<sup>97</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसे निराले प्रकार के मामलों में सामान्य दांडिक मामलों

---

<sup>96</sup>एआईआर 1990 एससी 709

<sup>97</sup>एआईआर 2005 एससी 402



में प्रयोग किए गए प्रिज्म से अलग प्रिज्म से देखा जाना चाहिए और इसका कारण यह है कि ऐसे किसी मामले में जिसमें किसी व्यक्ति के बारे में यह अभिकथन किया गया है कि उसकी मृत्यु पुलिस अभिरक्षा में हुई थी क्योंकि ऐसे मामलों में किसी प्रकार का साक्ष्य प्राप्त करना मुश्किल होता है। न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है:

“पुलिस यातना या अभिरक्षा के विरल मामलों में पुलिस कार्मिकों की सहअपराधिता से संबंधित प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य उपलब्ध होता है क्योंकि वे स्वयं ही उन परिस्थितियों का स्पष्टीकरण दे सकते हैं जिनमें किसी व्यक्ति की अभिरक्षा में मृत्यु हुई हो। पुलिस वाले आपस में एक दूसरे के साथ भाईचारे के बंधन में बंधे होते हैं इसलिए पुलिसकर्मी चुप रहते हैं और अपने साथियों को बचाने के लिए सच्चाई को सामने नहीं आने देते हैं.....। अभियोजन पक्ष द्वारा प्रत्येक युक्तिसंगत संदेह के परे सबूत को साबित करने के बड़ाचढ़ाकर जोर देना अनावश्यक है क्योंकि अभियोजन पक्ष वास्तविकताओं की अवहेलना के कारण स्वयं असमंजस में पड़ा होता है और प्रस्तुत मामले की निराली परिस्थितियों के कारण घोर अन्याय हो सकता है और न्याय प्रणाली संदेह के घेरे में आ सकती है। इसका अंततः परिणाम यह होता है कि सोसाइटी को भुगतना पड़ता है और अपराधी को प्रोत्साहन मिलता है.....। न्यायालयों को इस तथ्य की अवहेलना नहीं करनी चाहिए कि पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु किसी सभ्य समाज, जो विधिसम्मत शासन से शासित होता है, घिनोने अपराधों में से एक ऐसा अपराध है जो सभ्य समाज के लिए एक गंभीर धमकी है। अभिरक्षा में यातना पहुंचाने से भारतीय संविधान द्वारा मान्यताप्राप्त नागरिकों के मूल अधिकारों का निरादर और मानवीय गरिमा का तिरस्कार होता है। पुलिस की ज्यादातियां और निरुद्ध व्यक्ति/विचारणाधीन कैदियों या संदिग्धों के साथ बुरा बर्ताव करने से किसी सभ्य-समाज की छवि धूमिल होती है और “खाकी” वर्दी वालों के हौंसले बुलंद होते हैं और वे अपने आप को कानून से ऊपर मानते हैं और कभी कभी तो वे स्वयं को ही कानून समझने लगते हैं। जब तक कि इस मर्ज का इलाज करने के लिए कठोर कार्यवाही

नहीं की जाएगी तब तक अपनी ही मेढ़ फसल खाती रहेगी और दांडिक न्याय दिलाने की पद्धति डगमगा जाएगी और सभ्य समाज इसके परिणामस्वरूप गल-सड़ जाएगा और अराजकता फैल जाएगी और बर्बरतापूर्ण सत्तावाद स्थापित हो जाएगा। इसलिए न्यायालयों को ऐसे मामलों पर वास्तविक रीति से विचार करना चाहिए अन्यथा आम आदमी का विश्वास न्याय पद्धति की प्रभावकारिता में नहीं रहेगा और यदि ऐसा होता है सबके लिए यह एक ऐसी दुखद स्थिति होगी जिसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता।

5.21 महमूद नय्यर आजम ब. छत्तीसगढ़ राज्य<sup>98</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने एक सामाजिक कार्यकर्ता के मामले पर विचार किया जिसने गरीब जनता और हाशिए पर पड़े हुए समाज के व्यक्तियों के शोषण के मुद्दों के संबंध में आंदोलन किया था और उनमें जागरूकता जगाने का कार्य किया था उसको झूठे दांडिक मामलों में फंसाकर गिरफ्तार और उत्पीड़ित किया गया। पुलिस अभिरक्षा में उसके साथ बुरा बर्ताव और मारपीट की गई। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि किसी भी प्रकार की यातना या क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार, चाहे वह अन्वेषण, पूछताछ या अन्यथा के दौरान, किया गया हो वह संविधान के अनुच्छेद 20 और 21 की परिधि के अन्तर्गत आता है। 'सताना' पद के अन्तर्गत सन्ताप और कष्ट देना सम्मिलित है। न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:

“यदि सरकार के कृत्यकारी कानून तोड़ने वाले हो जाए तब इससे विधि की अवमानना करने वाले कई गुणा बढ़ जाएंगे और अराजकता को प्रोत्साहन मिलेगा तथा हर एक मनुष्य अपने को कानून समझेगा जिसकी वजह से अराजकता फैल जाएगी..... किसी नागरिक के प्राण के अधिकार को उसकी गिरफ्तारी पर प्रस्थापित नहीं किया जा सकता।”

5.22 डी.के. बासु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य<sup>99</sup> वाले मामले में अभिरक्षा हिंसा पर कई रिपोर्टों का परिशीलन करने पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित

---

<sup>98</sup>एआईआर 2012 एससी 2573

<sup>99</sup>एआईआर 1997 एससी 3017

किया कि “हवालात में अभिरक्षा हिंसा जिसके अंतर्गत यातना और मृत्यु कारित करना भी है यह विधिसम्मत शासन पर एक आघात है जो यह मांग करता है कि कार्यपालिका शक्ति न केवल विधि से प्राप्त करनी चाहिए अपितु इसे विधि द्वारा भी सीमित करना चाहिए।

5.23 न्यायालय ने कतिपय मार्गदर्शक सिद्धांत जारी किए हैं जिनका पालन, गिरफ्तारी और निरोध जिसके अंतर्गत वह पुलिस कार्मिक भी है जिसने गिरफ्तारी और अन्वेषण किया है, ऐसे पुलिस कार्मिक के पास दृश्यमान पहचान पत्र होना चाहिए जिसमें उसका पद आदि दर्शित होता हो तथा उसके पदाभिधान को रजिस्टर में भी अभिलिखित करना चाहिए; गिरफ्तारी के समय गिरफ्तार करने वाला अधिकारी गिरफ्तारी का ज्ञापन तैयार करेगा जिसे एक साक्षी, परिवार के सदस्य को अधिमानता दी जाएगी, द्वारा सत्यापित किया जाएगा तथा इस पर गिरफ्तार करने वाले व्यक्ति द्वारा प्रति हस्ताक्षरित किया जाएगा और इसमें गिरफ्तारी का समय और तारीख दर्शित की जाएगी; पूछताछ की अवधि के दौरान गिरफ्तार किया गया व्यक्ति तब तक अपने साथ एक मित्र या संबंधी को रखने का हकदार होगा जब तक उसकी गिरफ्तारी का सत्यापन करने वाला साक्षी उसका संबंधी/मित्र न हो; पुलिस द्वारा, गिरफ्तार किए गए किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने का समय, गिरफ्तारी का स्थान और अभिरक्षा के स्थान को, अधिसूचित किया जाना चाहिए और तुरंत विधिक सहायता संगठनों को तुरंत सूचित किया जाना चाहिए; गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को उसके इस अधिकार की सूचना देनी चाहिए कि उसकी गिरफ्तारी के तुरंत पश्चात् किसी को सूचित किया गया है। निरोध का स्थान और जिस पुलिस कर्मचारी के पास उसकी अभिरक्षा है, को प्रकट करते हुए डायरी में प्रविष्टि अवश्य की जानी चाहिए; गिरफ्तार किया गया व्यक्ति यदि अपनी गिरफ्तारी के समय, उसे बड़ी या छोटी क्षतियां पहुंची हुई हैं तब वह चिकित्सीय रूप से परीक्षा कराने का अनुरोध कर सकता है और गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की उसके निरोध के 48 घंटों के भीतर चिकित्सा परीक्षा कराई जाएगी, इलका मजिस्ट्रेट को गिरफ्तारी का ज्ञापन और सभी अन्य दस्तावेज भेजे जाएंगे, गिरफ्तार किए गए व्यक्ति को अपने वकील से पूछताछ के दौरान मिलने की अनुज्ञा दी जा सकती है और पुलिस नियंत्रण कक्ष को गिरफ्तारी और अभिरक्षा की बाबत उपरोक्त जानकारी संसूचित की जाएगी और इसे सहज दृश्य पर भी प्रदर्शित किया जाएगा।

5.24 न्यायालय ने आगे यह और मत व्यक्त किया:

“इसमें ऊपर उल्लिखित अपेक्षाओं का अनुपालन करने में असफल रहने पर संबंधित कर्मचारी विभागीय कार्रवाई के अलावा न्यायालय की अवमानना करने के लिए दंड का भी दायी होगा और देश के किसी ऐसे उच्च न्यायालय में, जिसके पास इस विषय पर राज्यक्षेत्रीय अधिकारिता हो, न्यायालय का अवमान करने के लिए कार्यवाहियां संस्थित की जा सकती हैं।”

5.25 संविधान के अनुच्छेद 21 और 22(1) में ये दोनों अपेक्षाएं हैं और सख्ती से इनका पालन करने की आवश्यकता है।

5.26 राम मूर्ति बनाम कर्नाटक राज्य<sup>100</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने कारागार द्वारा जिन विभिन्न विवादों का सामना किया जा रहा था उनकी पहचान की थी जिनमें सुधार किए जाने की आवश्यकता है और इसके अंतर्गत यातना और बुरा व्यवहार शामिल था।

5.27 सुबे सिंह बनाम हरियाणा राज्य<sup>101</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिरक्षा में हुई हिंसा और पूछताछ के दौरान पुलिस द्वारा उपयोग की जाने वाले अति कठोर कार्यवाही पर विचार किया था और ऐसी प्रक्रिया के पीछे ब्यौरेवार विचार-विमर्श किया था तथा इस प्रकार की हिंसा को कैसे रोका जाए इस संबंध में निवारक अध्युपायों का भी सुझाव दिया था। न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था:

“सुर्खियों में रहने वाले व्यक्तियों द्वारा कारित अपराध या जघन्य अपराधों में तुरंत परिणाम की प्रत्याशा के कारण पुलिस पर जैसे तैसे अपराधियों को पकड़ने के लिए बहुत अधिक दबाव होता है। तुरंत परिणाम प्राप्त करने के लिए वे अति कठोर रीति से कार्य करती हैं। अपने दबाव को कम

---

<sup>100</sup>एआईआर 1997 एससी 1739

<sup>101</sup>एआईआर 2006 एससी 1117

करने के लिए पुलिस वाले अपूर्ण अन्वेषण के आधार पर जल्दी में 'किसी भी व्यक्ति' को गिरफ्तार कर लेते हैं.....। सरकार के तीनों स्कंधों को उचित विधिक प्रक्रिया के अधीन वैज्ञानिक रीति के माध्यम से अन्वेषण करने को प्रोत्साहित, जोर और सुनिश्चित करना चाहिए और इसके पश्चात् त्वरित और कुशल अभियोजन करना चाहिए।”

5.28 न्यायालय ने पुलिस कार्मिकों की मानसिकता और व्यवहार में परिवर्तन करने के लिए पुनर्विन्यास पाठ्यक्रमों में प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए कतिपय निदेश भी जारी किए हैं, अभिरक्षा में की जाने वाली हिंसा का निवारण करने के लिए वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा पर्यवेक्षण करने का निदेश किया है, न्यायालय द्वारा डी.के. बासु (ऊपर) वाले मामले में न्यायालय द्वारा जारी किए गए निदेशों का और पुलिस कार्मिकों द्वारा अभिरक्षा में हिंसा करने से संबंधित शिकायतों पर स्वतंत्र अभिकरणों द्वारा अन्वेषण करने का सख्ती के साथ पालन करने का निदेश भी किया है।

5.29 रघुबीर सिंह बनाम हरियाणा राज्य<sup>102</sup> वाले मामले में, जहां संस्वीकृति हासिल करने के लिए पुलिस द्वारा हिंसा की गई थी जिसके परिणामस्वरूप चोरी के संदिग्ध व्यक्ति की मृत्यु हो गई, इस संबंध में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि पुलिस यातना की क्रूर पुनरावृत्ति के परिणामस्वरूप आम जनता के मन में यह भय भर गया है कि एक नई आपदा के अधीन उनके प्राण और स्वतंत्रता खतरे में है क्योंकि जब विधि के संरक्षक ही भक्षक बन जाए तब मानवाधिकार समाप्त हो जाते हैं।” न्यायालय आगे यह और मत व्यक्त किया कि मानवाधिकारों की भेद्यता से यह धारणा बनती है कि राज्य की पुलिस द्वारा जो हिंसक हिंसा की गई है वह बहुत अभिघाती, कुटिल तीक्ष्णता है क्योंकि उनका कृत्य नागरिकों का संरक्षण करना है न कि उनके विरुद्ध घिनौने अपराध कारित करना।

5.30 उ.प्र. राज्य ब. राम सागर यादव<sup>103</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने एक ऐसे मामले पर विचार किया था जिसमें पुलिस वाले ने बृजलाल नामक एक व्यक्ति की

---

<sup>102</sup>एआईआर 1980 एससी 1087

<sup>103</sup>एआईआर 1985 एससी 416

हत्या इसलिए कर दी थी क्योंकि उसने पशु अतिचार के एक मामूली मामले में न केवल 100 रुपये की रिश्वत देने से इंकार कर दिया था अपितु रिश्वत की मांग करने के बारे में ज्येष्ठ अधिकारियों को शिकायत भी की थी। न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि “केवल वही पुलिस अधिकारी और कोई नहीं उन परिस्थितियों की बाबत साक्ष्य दे सकता है जिसकी अभिरक्षा में ऐसा कोई व्यक्ति था जिसे उनकी अभिरक्षा के दौरान क्षति पहुंची थी .....। इसका परिणाम यह है कि पुलिस थाने के पवित्र स्थान में पुलिस द्वारा किए गए अत्याचार के संबंध में ऐसा कोई साक्ष्य नहीं छोड़ा गया जिससे यह साबित होता हो कि अपराधी कौन हैं।” न्यायालय ने यह सिफारिश की कि “ऐसे मानकों में सबूत के भार के रूप में जो विधि है उसकी पुनः परीक्षा विधानमंडल द्वारा की जानी चाहिए जिससे कि विधि और व्यवस्था से संबंधित सेवक निर्दोष नागरिकों को, जो उनकी और संरक्षण देने की दृष्टि से देखते हैं, उनको दबाने के लिए अपने प्राधिकार और अवसरों का प्रयोग न कर सकें।

5.31 उच्चतम न्यायालय ने प्रकाश कदम बनाम रामप्रसाद विश्वनाथ गुप्ता<sup>104</sup> वाले मामले में फर्जी मुठभेड़ पर अपनी नाराजगी अभिव्यक्त की। प्राइवेट व्यक्तियों ने कुछ पुलिस अधिकारियों और कर्मचारियों को अपने विरोधियों की हत्या करने के लिए लगा रखा था। यदि पुलिस कार्मिक किसी की हत्या की सुपारी लेकर हत्यारों के रूप में कार्य करेंगे तब साक्षियों के मन में अपनी स्वयं की सुरक्षा के बारे में बहुत सुदृढ़ आशंका उत्पन्न होगी कि पुलिस वाले स्वयं को बचाने के लिए महत्वपूर्ण साक्षियों या उनके संबंधियों की हत्या कर सकते हैं या मामले के विचारण के समय उन्हें धमकी दे सकते हैं। रक्षक ही भक्षक हो गए हैं। जैसा कि बाइबल में कहा गया है “यदि नमक का स्वाद ही खत्म हो जाएगा फिर इसका चरपरापन ही नहीं रहेगा।” या जैसा कि पुरातन रोम में कहा जाता था, “प्राटोरियन पहरेदारों की पहरेदारी कौन करेगा”? न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि जहां किसी विचारण में पुलिस वाले के विरुद्ध फर्जी मुठभेड़ साबित हो जाती है तब ऐसे मामले को विरल से विरलतम मामला मानते हुए मृत्यु दंड ही दिया जाना चाहिए। पुलिस वालों को यह चेतावनी दी गई कि “मुठभेड़” के नाम पर हत्या करने के लिए उन्हें क्षमा नहीं किया जाएगा और यह

<sup>104</sup>(2011) 6 एससीसी 189

दलील नहीं दी जा सकती है कि वे अपने उच्च अधिकारियों या राजनीतिज्ञों, चाहे कोई कितना भी बड़ा क्यों न हो, के आदेशों पर यह काम कर रहे थे। नूरेमबर्ग विचारण में नाजी युद्ध अपराधियों ने यह अभिवाक् किया था कि “आदेश, आदेश ही होते हैं” फिर भी उन्हें फांसी पर लटका दिया गया था। यदि किसी पुलिस वाले को उसके उच्चतर अधिकारी द्वारा फर्जी “मुठभेड़” करने का अवैध आदेश दिया जाता है तब उसका यह कर्तव्य है कि वह ऐसे अवैध आदेश का पालन करने से इनकार कर दे अन्यथा उसे हत्या कारित करने के लिए आरोपित किया जाएगा और यदि दोषी पाया जाता है तो उसे मृत्युदंड दिया जाएगा।

5.32 महबूब बाटचा बनाम राज्य<sup>105</sup> वाले मामले में पुलिस वालों ने नन्दगोपाल नामक व्यक्ति का, 30.5.1992 से 2.6.1992 तक चोरी के संदेह के आधार पर पुलिस अभिरक्षा में, संदोष परिरोध किया था और लाठियों से पीट पीटकर उसका मार दिया था तथा बर्बरतापूर्ण रीति में उसकी पत्नी पद्मिनी के साथ सामूहिक बलात्संग भी किया था। अभियुक्तों ने अन्य कई व्यक्तियों (जो साक्षी थे) का भी परिरोध किया था और पुलिस थाने में लाठियों से उनकी पिटाई की थी। इस मामले में अभियुक्तों का बर्बरतापूर्ण आचरण के रेखाचित्रीय वर्णन से न्यायालय के अन्तः करण को ठेस पहुंची और न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि पुलिस वालों को किसी लोकतांत्रिक देश में लोक सेवकों के रूप में व्यवहार कैसे किया जाता है सिखना चाहिए और जनता के साथ अत्याचारी की तरह व्यवहार नहीं करना चाहिए।

5.33 आंध्र प्रदेश राज्य बनाम एन. वेणुगोपाल<sup>106</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसा कोई उपबंध नहीं है, जिसमें अन्वेषण/विचारण या दोषसिद्धि के दौरान संदिग्ध को यातना देने के लिए, पुलिस अधिकारी को प्राधिकृत किया गया हो। न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया:

“इस संबंध में न्यायालय को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि कोई कृत्य विधि के उपबंध के ‘अधीन’ केवल इसलिए नहीं है क्योंकि जिस

---

<sup>105</sup>(2011) 7 एससीसी 45

<sup>106</sup>एआईआर 1964 एससी 33

समय यह कृत्य किया गया है वह समय उस समय से मेल खाता है जब कुछ कृत्य उपबंध द्वारा मंजूर की गई शक्तियों का प्रयोग करते हुए या उसके द्वारा अधिरोपित कर्तव्य के निष्पादन में किए गए हैं। यह कहने में समर्थ होने के लिए कि विधि के किसी उपबंध के “अधीन” कोई कृत्य किया गया है इसके लिए उपबंधों और कृत्य के बीच युक्तियुक्त संबंध के विद्यमान होने के बारे में पता लगाया जाना चाहिए। ऐसे किसी संबंध के अभाव में कृत्य के लिए यह नहीं कहा जा सकता है कि विधि के विशिष्ट उपबंध के “अधीन” यह कृत्य किया गया है।

उच्च न्यायालय ने यह सोचकर त्रुटि की है कि किसी अपराध के संदिग्ध व्यक्ति के साथ उस समय पुलिस अधिकारी ने कुछ भी किया है वह उसने उस समय किया था जब ऐसा पुलिस अधिकारी उस अपराध का अन्वेषण कर रहा था और इसके संबंध में यह माना जाना चाहिए कि अन्वेषण करने के अपने शासकीय कर्तव्य के निर्वहन में उसने ऐसा किया है और इस प्रकार विधि के उपबंधों के अधीन और वह उस पर यह कर्तव्य अधिरोपित करता है। विधि में यह मत बिल्कुल निराधार है।’

5.34 हरिचरण बनाम म.प्र. राज्य<sup>107</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह मत दोहराया है कि “अनुच्छेद 21 में प्राण या दैहिक स्वतंत्रता के अन्तर्गत मानव गरिमा के साथ रहना भी है। इसलिए इसके अन्तर्गत राज्य या इसके कृत्यकारियों द्वारा यातना और हमला करने के विरुद्ध इसके भीतर गारंटी भी है।” राज्य तंत्र का प्रयोग जनता को यातना पहुंचाने के लिए नहीं किया जाना चाहिए।

5.35 नन्दनी सतपक्षी बनाम पी.एल. दानी और एक अन्य<sup>108</sup> वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि न केवल दैहिक धमकी या हिंसा अपितु मानसिक यातना, वायुमण्डलीय दबाव, पर्यावरणीय उत्पीड़न, पुलिस द्वारा थकाने वाली पूछताछ से भी विधि का अतिक्रमण होता है।

---

<sup>107</sup>(2011) 4 एससीसी 159

<sup>108</sup>एआईआर 1978 एससी 1025



5.36 खत्री और अन्य बनाम बिहार राज्य<sup>109</sup> (भागलपुर का अंधा करने का मामला) वाला मामला कैदियों के साथ क्रूरता और अमानवीय व्यवहार का एक उदाहरण है जिससे संविधान की भावना का और अनुच्छेद 21 की मान्यताओं का भी अपमान होता है। इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने, पुलिस द्वारा विचारणाधीन कैदियों की पुतलियों में सूई से छेद करके उनमें एसिड भरने से संबंधित मामले पर विचार किया था। यह मामला यातना के पैटर्न और राज्य द्वारा इसके विवक्षित पृष्ठांकन के पैटर्न को दर्शित करता है।

5.37 उपर्युक्त मामले की समीक्षा करते समय यह मत व्यक्त किया गया है कि “पुलिस यातना के किसी अभिकथित मामले में विकट समस्या हिंसा का अपराध करने वाले व्यक्तियों की दोषिता को साबित करना है।”<sup>110</sup> ऐसी स्थिति के कारण हो सकता है जहां स्थानीय पुलिस और अपराधियों के बीच सांठगांठ हो और अपक्षपाती साक्षी न हो।

5.38 भगवान सिंह बनाम पंजाब राज्य<sup>111</sup> वाला मामला पुलिस अभिरक्षा में हुई मृत्यु से संबंधित है। उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि पूछताछ करने का यह अर्थ नहीं है कि क्षतियां कारित की जाएं। “किसी व्यक्ति के साथ कठोर मारपीट करने की प्रणाली मध्यकालीन प्रकृति की है और यह बर्बरतापूर्ण है तथा विधि के प्रतिकूल है। पुलिस अपने बंद दरवाजों के पीछे ऐसी कार्यवाही करती है हमारे विधिक आदेश में निश्चित रूप से ऐसी कार्यवाही को वर्जित किया गया है।”

5.39 डगडू और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य<sup>112</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है:

---

<sup>109</sup>एआईआर 1981 एससी 928

<sup>110</sup>यातना के कृत्य के विरुद्ध भारत की प्रतिक्रिया

<https://indialawyers.wordpress.com/2010/07/22/india%E2%80%99s-response-against-the-act-of-torture/> (visited on 26-10-2017).

<sup>111</sup>एआईआर 1992 एससी 1689

<sup>112</sup>एआईआर 1977 एससी 1579

“यदि कानून के अभिरक्षक अपराध कारित करने में लिप्त हो जाएंगे तब समाज का कोई भी सदस्य निरापद और सुरक्षित नहीं रहेगा। यदि पुलिस अधिकारी जिन्हें नागरिकों को सुरक्षा और संरक्षण देना होता है वे यदि ऐसी प्रणाली में लिप्त हो जाएंगे तो नागरिकों के मन में असुरक्षित होने की भावना सृजित हो जाएगी। यह इतना घिनौना है मानो शिकार का रक्षक ही शिकारी बन गया हो।”

5.40 रामलीला मैदान की घटना बनाम गृह सचिव, भारत संघ<sup>113</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि:

“संविधान के अनुच्छेद 355 में यह उपबंध किया गया है कि प्रत्येक राज्य की सरकार संविधान के उपबंधों के अनुसार ही कार्य करेगी। राज्य का प्राथमिक कार्य मानव गरिमा का अतिक्रमण किए बिना सभी नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करना है। कानूनी प्राधिकारियों को प्रदत्त की गई शक्तियां मजबूरन स्वीकार की जाती हैं। कुछ भी हो, संविधान निर्माताओं का सार भी यह है कि राज्य का कोई भी अंग संविधान में जो विनिर्दिष्ट किया गया है उससे परे की शक्तियों को अनधिकार ग्रहण नहीं करेगा.....। इसलिए ऐसा प्रत्येक कार्य जिससे मानव गरिमा का उल्लंघन या भंग होता है तो उस सीमा तक उसके रहने के अधिकार का वंचन होता है और राज्य की कार्यवाही विधि द्वारा स्थापित युक्तियुक्त, उचित और न्यायोचित प्रक्रिया के अनुसार ही होनी चाहिए जो अन्य मूल अधिकारों की कसौटी पर खरा उतरे।”

5.41 सी.बी. आई बनाम किशोर सिंह<sup>114</sup> वाले मामले में कान्सटेबल किशोर सिंह द्वारा बिना किसी शिकायत के एक व्यक्ति को इस संदेह के आधार पर गिरफ्तार किया गया था कि श्रीमती गज कंवर, उसकी संबंधी, के साथ गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के अवैध संबंध हैं। उस पर शारीरिक रूप से हमला ही नहीं किया गया था अपितु तेज धार

---

<sup>113</sup>(2012) 5 एससीसी 1

<sup>114</sup>(2011) 6 एससीसी 369

आयुध से उसके लिंग को काट दिया था। उच्च न्यायालय द्वारा दंडादेश को कम करने और एक अभियुक्त दोषमुक्त करने के आदेश के विरुद्ध सी.बी. आई की अपील पर विचार करते समय उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि किसी पुलिस थाने में पुलिस वालों और पीड़ित के सिवाय कोई साक्षी नहीं हो सकता है क्योंकि पुलिस थाना सावर्जनिक स्थान नहीं है। न्यायालय ने आगे यह और मत व्यक्त किया कि:

“हमारी राय में जिस पुलिस वाले ने आपराधिक कार्य किया है तो वह ऐसे कृत्यों को करने वाले अन्य व्यक्तियों के मुकाबले कठोर दंड का पात्र है, क्योंकि पुलिस वाले का यह कर्तव्य होता है कि वह जनता का संरक्षण करे न कि स्वयं कानून को तोड़े। यदि रक्षक ही भक्षक बन जाएगा तब समाज का अस्तित्व ही नहीं रहेगा।”

5.42 एस. नाम्बि नारायणन ब. सिबी मैथ्यू और अन्य<sup>115</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने एक ऐसे मामले को ग्रहण किया था जिसमें एक उच्च ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिक को बिना किसी न्यायोचित्य कारण के पुलिस अभिरक्षा में लिया गया था। न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि ऐसे किसी मामले में हस्तक्षेप न करने से पुलिस को बहुत ढील मिल जाएगी और वह किसी भी व्यक्ति को बिना किसी कारण के अभिरक्षा में ले सकेगी। यद्यपि अन्वेषक अधिकारी अधिवर्षिता की आयु पर पहुंच चुका था फिर भी उसका अभियोजन करने का निदेश किया गया। इसी प्रकार के मत को, मुराद अब्दुल मुलानी ब. सलमा बाबू शेख और अन्य<sup>116</sup> वाले मामले में अन्वेषण अभिकरण द्वारा की गई निष्क्रियता के लिए, दोहराया गया था।

5.43 शीला बार्से बनाम महाराष्ट्र राज्य<sup>117</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने सामान्य रूप से गिरफ्तार करने और विशेष रूप से महिलाओं को गिरफ्तार करने की बाबत मार्गदर्शक सिद्धांत अधिकथित किए हैं। न्यायालय ने यह निदेश किया कि चार या पांच हवालातों को महिला संदिग्धों के लिए आरक्षित किया जाए और पुरुष संदिग्धों से दूर रखा जाए तथा महिला कान्सटेबलों द्वारा पहरेदारी की जाए; महिलाओं से

---

<sup>115</sup> (2015) 14 एससीसी 664

<sup>116</sup> (2015) 14 एससीसी 543

<sup>117</sup> एआईआर 1983 एससी 378

पूछताछ केवल महिला पुलिस अधिकारी/कान्सटेबल की मौजूदगी में की जाए; जिला न्यायाधीश, गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों को उनकी शिकायतों को सुनने का अवसर देने के लिए और यह अभिनिश्चित करने के लिए कि पुलिस हवालातों में क्या स्थिति है और अपेक्षित सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं या नहीं तथा विधि के उपबंधों का पालन किया जा रहा है या नहीं और न्यायालय द्वारा दिए गए निदेशों को कार्यान्वित किया जा रहा है या नहीं, पुलिस हवालातों का औचक दौरा करेंगे। जब मजिस्ट्रेट के समक्ष गिरफ्तार किए गए किसी व्यक्ति को पेश किया जाता है तब वह गिरफ्तार किए गए व्यक्ति से पूछेगा कि पुलिस अभिरक्षा में यातना या बुरा बर्ताव करने के संबंध में उसे कोई शिकायत है या नहीं तथा उसे सूचित करेगा कि उसके पास दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 54 के अधीन चिकित्सीय रूप से परीक्षा कराने का अधिकार है।

5.44 इसलिए उपर्युक्त न्यायिक निर्णय से यह स्पष्ट है कि किसी लोक सेवक या राज्य द्वारा इसके विवक्षित पृष्ठांकन द्वारा दी गई यातना की न्यायालयों द्वारा सदैव भर्त्सना की गई है। यातना सदैव एक विवादास्पद मुद्दा रहा है और इसका सीधा प्रभाव किसी व्यक्ति के प्राण और स्वतंत्रता के अधिकार पर पड़ता है। आयोग की यह राय है कि ऐसे घिनौने कृत्यों को सुदृण विधान, जिसमें कठोर कारावास जो भयोपरक के रूप में कार्य करेगा का उपबंध किया जाए, के माध्यम से नियंत्रण किया जाना चाहिए।

5.45 इसके अतिरिक्त आयोग का यह मत है कि यातना के पीड़ितों के हितों का और शिकायतकर्ताओं और साक्षियों के विरुद्ध धमकी या शारीरिक और मानसिक हिंसा से संरक्षण करने के लिए कुछ प्रभावी प्रणाली होनी चाहिए।

## अध्याय-6

### अभिरक्षा में दी गई यातना/ मृत्यु के लिए प्रतिकर

6.1 प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति का सिद्धांत- सामान्य विधि सिद्धांत की एक धारणा पिछली कई शताब्धियों से निरंतर रूप से ब्रिटिश न्यायशास्त्र में जिसका पालन किया जा रहा है वह यह है कि “राजा कोई गलती नहीं करता है” और इसलिए उसे व्यक्तिगत उपेक्षा/अवचार के लिए दोषी अभिनिर्धारित करना संभव नहीं है और न ही उसे उसके सेवकों की उपेक्षा या अवचार के लिए जिम्मेदार अभिनिर्धारित किया जा सकता है। यह सिद्धांत इस धारणा पर विकसित हुआ कि किसी राज्य पर अपने स्वयं के न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है।<sup>118</sup>

6.2 पी. एण्ड ओ. स्टीम नेविगेशन कंपनी बनाम परिषद् में भारत के लिए राज्य सचिव (सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया-इन काउन्सिल)<sup>119</sup> वाले मामले में विधिक स्थिति स्पष्ट की गई थी:

“यदि किसी लोक सेवक द्वारा कोई अपकृत्य कारित किया गया है और इससे नुकसानी के लिए कोई दावा उद्भूत होता है तब यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या लोक सेवक द्वारा अपकृत्य अपने कानूनी कृत्यों के निर्वहन में कारित किया गया था जिसे निर्दिष्ट किया जा सकता है और अंततः क्या यह ऐसे लोक सेवक के राज्य की प्रभुत्वसंपन्न शक्तियों के प्रत्यायोजन पर आधारित था। यदि उत्तर सकारात्मक है तब ऐसे अपकृत्य द्वारा हुई हानि के लिए नुकसानी के लिए कार्रवाई नहीं की जा सकेगी। दूसरी तरफ यदि किसी लोक अधिकारी ने अपकृत्य उसे समनुदेशित कर्तव्यों के निर्वहन में कारित किया है न कि किसी प्रभुत्वसंपन्न शक्ति के प्रत्यायोजन के आधार पर तब नुकसानी के लिए कार्रवाई की जाएगी। अपनी नियुक्ति के दौरान लोक सेवक द्वारा यह कृत्य

<sup>118</sup> डाक्टरिन आफ साबरन इम्युनिटी, <http://www.neerajaarora.com/doctrine-of-sovereign-immunity/> (visited on 26-10-2017).

<sup>119</sup> (1869) 5 बोम्बे एचसीआर एपीपी ए-1

कारित किया गया है, इस प्रवर्ग के मामलों में, ऐसे सेवक का कोई कृत्य जिसे ऐसे ही प्रयोजन के लिए किसी प्राइवेट व्यक्ति द्वारा कारित किया गया हो के समान माना जाएगा।”

6.3 भारत के विधि आयोग ने अपनी पहली रिपोर्ट (1956) जिसका शीर्षक “अपकृत्य में राज्य का दायित्व” था यह विचार व्यक्त किया कि संविधान को विरचित करने के समय इस प्रश्न पर विचार किया गया था कि किस सीमा तक संघ और राज्यों को उनके सेवकों या अभिकर्ताओं के अपकृत्य के लिए दायी माना जाए। इसे भविष्य में बनने वाले विधानों पर छोड़ दिया गया था। इस प्रकार परिवर्तित परिस्थितियों/दशाओं में देश को उपयुक्त विधान विरचित करना चाहिए। प्रभुत्वसंपन्न और गैर-प्रभुत्वसंपन्न कृत्यों को अवधारित करने के लिए राज्य का दायित्व अन्तर्ग्रस्त नहीं किया जा सकता है और इसलिए नागरिकों को कारित क्षतियों के लिए राज्यों को और राज्य के कर्मचारियों के मामले में कर्तव्यों के निर्वहन में कारित दोष को साधारण विधि के दायित्वों के अध्यधीन किया जाना चाहिए।

6.4 राजस्थान राज्य बनाम विद्यावती<sup>120</sup> वाले मामले में उदयपुर के कलेक्टर के ड्राइवर की उपेक्षा के कारण हुई दुर्घटना में मृतक के आश्रितों द्वारा नुकसानी के लिए दावा किया गया था राजस्थान के उच्च न्यायालय द्वारा अपील मंजूर की गई थी और उच्चतम न्यायालय ने राज्य की प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति के अभिवाक् को नामंजूर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि ड्राइवर के अपकृत्य के लिए राज्य उसी प्रकार से दायी जैसे कि कोई अन्य नियोजक होता है।

6.5 तथापि, कस्तूरी लाल बनाम उ.प्र. राज्य<sup>121</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने प्रतिकूल मत व्यक्त किया और प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति के अभिवाक् को कायम रखा। इस मामले में कस्तूरीलाल रलियाराम जैन, अमृतसर के जौहरियों की एक फर्म के एक भागीदार को मेरठ में पुलिस द्वारा चोरी की संपत्ति रखने के संदेह में अभिरक्षा में लिया गया था। उसको रिहा कर दिया गया किंतु उससे जब्त किए गए सोने के गहनों को

---

<sup>120</sup>एआईआर 1952 एससी 933

<sup>121</sup>एआईआर 1965 एससी 1039

लौटाया नहीं गया। मालखाने के भारसाधक हेड कान्सटेबल ने न केवल दुर्विनियोग किया अपितु वह पाकिस्तान भाग गया। फर्म ने जेवरों की वसूली या आनुकल्पिक प्रतिकर का दावा किया। उच्चतम न्यायालय ने दावे को इस आधार पर नामंजूर कर दिया उनके नियोजन के दौरान कर्मचारियों ने यह कृत्य कारित किया था, वह किसी प्रभुत्वसंपन्न शक्ति प्रकृति का था।

6.6 रूदाल शाह बनाम बिहार राज्य<sup>122</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने बिल्कुल विपरीत मत व्यक्त किया है, प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति के अभिवाक को नामंजूर कर दिया और उसकी दोषमुक्ति के पश्चात् पूर्ण रूप से हुए विचारण में प्रतिकर अधिनिर्णीत किया क्योंकि याची को अवैध रूप से चौदह वर्ष से ऊपर की अवधि के लिए कारावास में निरुद्ध रखा गया था।

6.7 आन्ध्र प्रदेश राज्य बनाम छल्ला रामकृष्ण रेड्डी<sup>123</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के इस मत की पुष्टि की कि जहां मूल अधिकार का अतिक्रमण किया जाता है वहां प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति उपलब्ध नहीं होगी। न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:

“यह उक्ति की कि राजा कोई गलती नहीं कर सकता है या क्राउन अपकृत्य के लिए जवाबदेह नहीं है इस उक्ति का भारतीय विधिशास्त्र में कोई स्थान नहीं है क्योंकि यह शक्ति क्राउन में निहित नहीं है, अपितु जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि सरकार चलाते हैं और संविधान के उपबंधों के अनुसार कृत्य करते हैं और इसके अतिक्रमण के लिए वे जनता के प्रति जवाबदेह है।”

6.8 नीलावती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य और एक अन्य<sup>124</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि:

---

<sup>122</sup>एआईआर 1983 एससी 1086

<sup>123</sup>एआईआर 2000 एससी 2083

<sup>124</sup>एआईआर 1993 एससी 1960

.....किसी सिविल कार्रवाई में, किए गए किसी दोष के लिए लोक विधि की अधिकारिता के अधीन राज्य द्वारा नागरिकों के प्राण के मूल अधिकार का संरक्षण न करने की वजह से लोक कर्तव्य भंग हो जाने के कारण, प्रतिकर दिया जा सकता है। किए गए दोष में सुधार करने के लिए विधिक क्षति के लिए न्यायिक प्रतितोष न्यायिक अन्तःकरण के लिए एक बाध्यता है।

6.9 संयुक्त राष्ट्र महासभा ने “डिक्लरेशन आफ बेसिक प्रिंसिपल आफ जस्टिस फार विक्टिम्स आफ क्राइम एण्ड अवयूज आफ पावर, 1985” (अपराध और बुरे बर्ताव की शक्ति से पीड़ितों के लिए मौलिक सिद्धांतों की घोषणा, 1985) नामक संकल्प पारित करके अपराध के पीड़ितों के प्रतिकर प्राप्त करने के अधिकार को मान्यता दी है। इसका सुसंगत भाग निम्नलिखित है:

11. जहां किसी लोक पदधारी या किसी शासकीय या अर्ध-शासकीय के रूप में कार्य कर रहे अन्य अभिकर्ता ने राष्ट्रीय दंड विधियों का अतिक्रमण किया है वहां पीड़ित उस राज्य से जिसके पदधारी या अभिकर्ता अपहानि कारित करने के जिम्मेदार थे उससे मुआवजा प्राप्त करेंगे। यदि जहां सरकार के अधीन जिस प्राधिकारी ने अत्याचार या लोप किया था वह अब विद्यमान नहीं है तब राज्य सरकार में पद में उत्तरवर्ती पीड़ितों को मुआवजा प्रदान करेंगे।

6.10 संयुक्त राष्ट्र महासभा ने “बेसिक प्रिंसिपल एण्ड गाइडलाइन्स आन दि राईट टू ए रिमेडी एण्ड रेपरेशन फार विक्टिम आफ ग्रास वायलेंशन आफ इन्टरनेशनल ह्यूमन राइट्स लॉ एण्ड सिरियस वायलेंशनस आफ इन्टरनेशनल ह्यूमनटेरियन लॉ 2005” शीर्षक नामक एक संकल्प पारित किया जिसमें अन्तरराष्ट्रीय अपराध और मानव अधिकार अतिक्रमणों के पीड़ितों के अधिकारों पर विचार किया गया है। प्रतिकर से संबंधित सुसंगत भाग निम्नलिखित है:



13. मानव अधिकारों या अन्तरराष्ट्रीय मानवीय विधि के अतिक्रमण के परिणामस्वरूप किसी आर्थिक रूप अवधारणीय नुकसान के लिए प्रतिकर प्रदान किया जाएगा जैसे कि:

- (क) शारीरिक या मानसिक क्षति, जिसके अन्तर्गत पीड़ा, कष्ट और भावनात्मक दुःख भी है;
- (ख) अवसर की हानि जिसमें शिक्षा भी है;
- (ग) सामग्री की नुकसानी और कमाई की हानि जिसमें कमाई करने की हानि भी है;
- (घ) प्रतिष्ठा या गरिमा पर आंच;
- (ङ) विधिक या विशेषज्ञ सहायता, औषधियां और चिकित्सा सेवा के अपेक्षित लागत।”

6.11 भारत के विधि आयोग ने अपनी 41वीं रिपोर्ट (1969), जिसका शीर्षक ‘दंड प्रक्रिया संहिता, 1898’ था, में दंड प्रक्रिया संहिता 1898 की धारा 545 पर विस्तार से विचार किया था और निम्नलिखित सुझाव दिया था:

“46.12 धारा 545 की उपधारा (1) खंड (ख) के अधीन न्यायालय, “अपराध द्वारा कारित किसी हानि या क्षति के लिए, जब न्यायालय की राय में किसी सिविल न्यायालय में ऐसे व्यक्ति से पर्याप्त प्रतिकर वसूल किया जा सकता है, तब न्यायालय किसी व्यक्ति को प्रतिकर का संदाय करने का निदेश दे सकता है।”

6.12 दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 पर विधि आयोग की 154वीं रिपोर्ट में एक पूरा अध्याय अपराध पीड़न-उपचार शास्त्र (विक्टिमोलाजी) पर है जिसमें दांडिक विचारणों में पीड़ित व्यक्ति के अधिकारों पर बढ़ते हुए महत्व पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया<sup>125</sup>:

---

<sup>125</sup>सुरेश और एक अन्य बनाम हरियाणा राज्य, (2015) 2 एससीसी 227

“1. अपराधविज्ञानियों, शास्त्रविज्ञानियों और दांडिष्क न्याय तंत्र के सुधारकों का ध्यान, आज दिन प्रतिदिन घटना के शिकार व्यक्तियों से संबंधित विज्ञान (विक्टिमोलोजी), अपराध के शिकार व्यक्तियों के पीड़न और संरक्षण की ओर आकृष्ट हो रहा है। अपराधों में सामाजिक व्यवस्था को प्रायः नाममात्र का नुकसान ही नहीं होता अपितु इससे जनता को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। परिणामस्वरूप, अपराध के शिकार व्यक्तियों की आवश्यकताओं और अधिकारों का अपराध के समग्ररूपेण विवेचन में पूर्विकता प्रदान की जानी चाहिए। घटना के शिकार व्यक्तियों के संरक्षण का एक मान्य तरीका अपराध के शिकार व्यक्तियों को प्रतिकर है। घटना के शिकार व्यक्तियों और उनके कुटुम्ब की आवश्यकताएं व्यापक और विभिन्न होती हैं।

.....9.1 पीड़न शास्त्र के सिद्धांतों की आधारभूमि भारतीय सांविधानिक विधिशास्त्र में है। मूल अधिकारों [भाग-3 और राज्य नीति के निदेशक तत्व (भाग-4) के उपबंध नूतन सामाजिक व्यवस्था की आधारभूमि है जिसमें सामाजिक और आर्थिक न्याय देश के राष्ट्रीय जीवन में विकसित होगा (अनुच्छेद 38)]। अनुच्छेद 41 में, अन्य बातों के साथ-साथ, यह आदिष्ट है कि राज्य निःशक्तत और अनुचित आवश्यकता के अन्य मामलों में “लोक सहायता का अधिकार प्राप्त किए जाने” के लिए प्रभावी उपबंध करेगा। इसी प्रकार अनुच्छेद 51क में, अन्य बातों के साथ-साथ, “जीवित प्राणियों के प्रति दया भाव दर्शित करना” और “मानवीयता विकसित करना” प्रत्येक भारतीय नागरिक का मूल कर्तव्य माना गया है। यदि इन उपबंधों का ऋजुतापूर्वक निर्वचन किया जाए और उन्हें काल्पनिक रूप से व्यापकता प्रदान की जाए तो ये पीड़न शास्त्र का संविधानिक आधार बन सकते हैं।

6.13 तारीख 10 अप्रैल, 1979 को सिविल और राजनैतिक अधिकारों पर अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा (आईसीसीपीआर) को स्वीकार करते समय भारत ने अनुच्छेद 9(5) के संबंध में शर्त लगाई थी कि- प्रतिकर पर उपबंध के संबंध में यह उल्लेखनीय

है कि भारतीय विधिक पद्धति विधिविरुद्ध गिरफ्तारी या निरोध के पीड़ितों के लिए प्रतिकर के अधिकार को मान्यता नहीं देती है।

6.14 डी.के. बासु वाले मामले में<sup>126</sup> उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि चूंकि न्यायालयों द्वारा राज्य को प्रतिकर का संदाय करने का निदेश उसे उसके कर्मचारियों के अवैध कृत्यों के लिए प्रतिनिधिक दायित्व के अधीन मानकर किया जाता है इसलिए भारत सरकार द्वारा आईसीसीपीआर के खंड 9(5) के संबंध लगाई गई शर्त सुसंगत नहीं है। इस प्रकार यह एक प्रवर्तनीय अधिकार है। राज्य या इसके अभिकरणों द्वारा “यातना” पहुंचाना जिसके अन्तर्गत “मानसिक यातना” भी है भारत में अब लोक विधि प्रशासन का एक भाग है।

6.15 राम लखन सिंह बनाम उ.प्र. राज्य<sup>127</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन वृत्तिक कैरियर, प्रतिष्ठा, अत्यधिक मानसिक संताप, अत्यधिक वित्तीय हानि और बदनामी के नुकसान के लिए प्रतिकर से संबंधित मामले पर विचार किया था। इस मामले में उच्च न्यायालय के आदेशों का निरादर करते हुए प्रत्यर्थी राज्य के तत्कालीन मुख्यमंत्री के कहने पर मिथ्या सतर्कता मामलों में भारतीय वन सेवा के अधिकारी-याची को अपराध में फंसाने के बाद प्रत्यर्थी-प्राधिकारियों द्वारा अवैध निरोध किया गया था।

6.16 उच्च न्यायालय ने अपने निष्कर्ष में यह अभिलिखित किया था कि मिथ्या सतर्कता मामले में याची को अपराध में फंसाने के पश्चात् प्राधिकारियों द्वारा अवैध रूप से निरोध किया गया था। यह विधिक प्रक्रिया के दुरुपयोग का एक स्पष्ट मामला है। याची और उसके परिवार के सदस्यों की समाज में बदनामी होने के अलावा उन्हें बहुत अधिक मानसिक यन्त्रणा झेलनी पड़ी है तथा भारी आर्थिक नुकसान हुआ है। उच्चतम न्यायालय ने उसे 10 लाख रुपये का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया और निम्नलिखित मत व्यक्त किया है:

---

<sup>126</sup> ऊपर वाला मामला

<sup>127</sup> (2015) 16 एससीसी 715

“12 ऐसे परिवेश में जब तक कि हम किसी दोषी अधिकारी का अभियोजन करने और किसी निर्दोष अधिकारी का संताप देने वाले, तुच्छ और विद्वेषपूर्ण अभियोजन से संरक्षण करने के बीच उचित संतुलन नहीं करेंगे तब तक लोक सेवक के लिए स्वतंत्र और उचित रीति में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में कठिनाई होगी। किसी लोक सेवक की दक्षता यह मांग करती है कि उसे भयरहित होकर बिना किसी पक्षपात के शासकीय कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए स्वतंत्र छोड़ दिया जाए। इस अंतर को भरने के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि ईमानदार अधिकारियों का संरक्षण किया जाए और भ्रष्ट अधिकारियों को यह महसूस कराया जाए कि वे विधि से ऊपर नहीं हैं। किसी ईमानदार अधिकारी का संरक्षण न केवल उसके हित में है अपितु समाज के ज्यादा हित में है। इस न्यायालय ने कई बार ईमानदार और निष्कपट अधिकारियों को आश्वस्त किया है कि वे एक बेहतर समाज के लिए स्वतंत्र और उचित रीति में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करें।”

6.17 उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 32 और उच्च न्यायालयों ने अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए राज्य के सेवकों के अपकृत्य से पहुंची क्षतियों के लिए याचियों को नुकसानी अधिनिर्णीत की है और पीड़ितों के मूल अधिकारों का अतिक्रमण करने के लिए राज्य को प्रतिकर का संदाय करने का दायी माना। विनिश्चित किए गए मामलों से सर्वेक्षण से यह प्रकट हुआ है कि न्यायालयों ने अपनी न्यायिक सक्रियतावादी भूमिका में दो तरीके अपनाए हैं लोक सेवक द्वारा शक्ति का दुरुपयोग किए जाने पर प्रशमन उपचार के रूप में पीड़ितों को प्रतिकर का अधिकार दिया है और राज्य के सेवकों की उपेक्षा के लिए उन्हें दंडित किया है।<sup>128</sup>

<sup>128</sup>देखें: राजस्थान राज्य बनाम विद्यावती, एआईआर 1962 एससी 993; बसावा कौम डी. पाटिल बनाम मैसूर राज्य, एआईआर 1977 एससी 1749; वीना सेठी बनाम बिहार राज्य, एआईआर 1983 एससी 339; भीम सिंह बनाम जम्मू-कश्मीर राज्य, 1983 अनुपूरक. एससीसी 564; सेबस्टाइन एम. हांग्रेव ब. भारत संघ, एआईआर 1984 एससी 571; भीम सिंह ब. जम्मू-कश्मीर राज्य, एआईआर 1986 एससी 494; सहेली ब. पुलिस आयुक्त, एआईआर 1990 एससी 513; सूबे सिंह ब. हरियाणा राज्य और अन्य., एआईआर 2006 एससी 1117; और डा. महमूद नय्यर आजमी ब. छत्तीसगढ़ और अन्य., एआईआर 2012 एससी 2573 वाले मामले

6.18 उच्चतम न्यायालय ने अभिरक्षा में दी गई यातना के मामले में संविधान के अनुच्छेद 142 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करते हुए श्रीमती शकीला अब्दुल गफार खान बनाम वंसत रघुनाथ घोवले<sup>129</sup> वाले मामले में राज्य सरकार को यह निदेश किया कि राज्य सरकार मृतक की माता और बालकों को एक लाख रुपये का संदाय प्रतिकर के रूप में दे। निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया था:

“प्रतिकर की यह रकम एक प्रशामक उपचार के उपाय के रूप में होगी और प्रभावी व्यक्ति राज्य सरकार से और इसके पापी कर्मचारियों से उपयुक्त नुकसानी वसूल करने का वाद यदि विधि में ऐसा कोई उपचार उपलब्ध है तो लाने से निर्बंधित नहीं है।

6.19 उपरोक्त मामले का विनिश्चय करते समय न्यायालय ने जेनसिन बनाम बेकर<sup>130</sup> वाले मामले में क्वीन न्यायपीठ के निर्णय को निर्दिष्ट किया जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था:

“विधि को लुंज-पुंज नहीं समझना चाहिए क्योंकि जो कानून को नहीं मानते हैं वे मुक्त हैं और जो इसका संरक्षण चाहते हैं उन्होंने उम्मीद छोड़ दी है।”

6.20 डा. रिनी जौहर बनाम मध्य प्रदेश राज्य<sup>131</sup> वाले मामले में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि सम्यक प्रक्रिया का अतिक्रमण करके की गई गिरफ्तारी गंभीर रूप से गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की गरिमा को जोखिम में डालती है और विधि, शक्ति का दुरुपयोग जिससे पीड़ा और संताप पहुंचता है, समर्थन नहीं करती है। तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् न्यायालय ने पांच लाख रुपये के प्रतिकर का अधिनिर्णय दिया।

---

<sup>129</sup>एआईआर 2003 एससी 4567

<sup>130</sup>1972 (1) आल इंग्लैंड रिपोर्टर 1006

<sup>131</sup>एआईआर 2016 एससी 2679

6.21 महाराष्ट्र राज्य बनाम भारत की इसाई कल्याण परिषद<sup>132</sup> वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि “प्रश्न यह है कि राज्य द्वारा सदत्त प्रतिकर को संबंधित अधिकारी से वसूल किया जा सकता है या नहीं? यह बात इस तथ्य पर निर्भर करेगी कि संबंधित अधिकारी द्वारा किया गया अभिकथित दुराचार अपने विधिपूर्ण कर्तव्यों के निर्वहन के अनुक्रम में कारित किया गया है या उससे परे या आधिक्य में, इसका अवधारण उचित जांच में किया जाएगा।”

6.22 न्यायालय द्वारा प्रतिकर का अवधारण विभिन्न पहलुओं, जैसे कि कारित क्षति की प्रकृति; किस रीति से क्षति कारित की गई; क्षति कारित करने का प्रयोजन; ऐसी क्षति के कारण पीड़ित को किस सीमा तक पीड़ा पहुंची; को ध्यान में रखते हुए किया जाएगा। न्यायालय यातना की प्रकृति, जो कि शारीरिक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक हो सकती है, को ध्यान में रखते हुए विचार करेगा। न्यायालयों को यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि उपचार के लिए पीड़ित को कितनी रकम की आवश्यकता है और यातना की त्रासदी से बाहर निकलने के लिए और पीड़ित के पुनर्वास के लिए कितनी रकम की आवश्यकता हो सकती है। प्रतिकर का अवधारणा करते समय न्यायालय को पीड़ित की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना चाहिए जो कि न्यायोचित और पर्याप्त प्रतिकर की रकम का अवधारण करने का कारक होगा।

6.23 इस प्रकार यह स्पष्ट है कि न्यायालयों ने प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति के अभिवाक को नामंजूर कर दिया है जो कि अपकृत्य विधि के सार के विपरीत है। अपकृत्य विधि में यह उपबंध किया गया है कि दायित्व उपेक्षा का अनुसरण करता है और व्यक्ति और राज्य अपने उन अभिकर्ताओं/कर्मचारियों की उपेक्षा के लिए जिम्मेदार है जो उन्होंने अपने नियोजन के अनुक्रम में की है। चूंकि उपेक्षा/यातना विधिविरुद्ध है और संविधान के अनुच्छेद 21 के विरुद्ध है और चूंकि प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति संवैधानिक अधिदेश पर अभिभावी नहीं हो सकती है इसलिए कानूनी प्राधिकारियों या उनके अभिकर्ताओं द्वारा मूल अधिकारों का अतिक्रमण करने का दावा स्वीकार्य नहीं है। इसलिए, ऐसे प्राधिकारी प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति का दावा नहीं कर सकते।

---

<sup>132</sup>एआईआर 2004 एससी 7

## अध्याय-7

### सिफारिशें

7.1 किसी लोक सेवक द्वारा यातना पहुंचाने की कोटि क्या है, इस संबंध में आयोग ने काफी व्यापक रूप से “यातना” की परिभाषा को परिभाषित किया है इसके अन्तर्गत या तो जानबूझकर या अनिच्छा से क्षति पहुंचाना है या ऐसी किसी क्षति को कारित करने का प्रयास करना है जिसमें शारीरिक, मानसिक या मनोवैज्ञानिक क्षति शामिल है। यातना के विभिन्न पहलुओं पर आधारित आयोग ने एक प्रारूप विधेयक, जिसका शीर्षक “यातना निवारण विधेयक, 2017” है, तैयार किया है जो इस रिपोर्ट के साथ संलग्न है। पूर्वगामी अध्यायों से निकाले गए निष्कर्षों के आधार पर आयोग निम्नलिखित सिफारिशें करता है:

#### (i) यातना के विरुद्ध कन्वेंशन का अनुसमर्थन

7.2 एक यातना विरोधी विधि के अभाव में अपराधियों का प्रत्यर्पण कराने में देश द्वारा जिन कठिनाईयों का सामना किया जा रहा है उन्हें पराजित करने के लिए; और प्राण और स्वतंत्रता के किसी व्यक्ति के अधिकार को सुरक्षित करने के लिए, आयोग ने यातना के विरुद्ध कन्वेंशन के अनुसमर्थन पर विचार करने की सिफारिश की है और यदि केन्द्रीय सरकार कन्वेंशन का अनुसमर्थन करने का विनिश्चय करती है, तब उपाबंध पर रखे हुए विधेयक पर विचार किया जा सकता है।

#### (ii) विद्यमान कानूनों में संशोधन

7.3 आयोग ने अध्याय 4 में विद्यमान विधिक उपबंधों का विश्लेषण किया है। आयोग इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि क्रमशः प्रतिकर और साबित करने के भार की बाबत उपबंधों को समायोजित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में संशोधन करना आवश्यक है।

क दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

7.4 आयोग ने धारा 357ख का संशोधन करके इसमें प्रतिकर का संदाय को सम्मिलित करने की सिफारिश की है यह भारतीय दंड संहिता की धारा 326क या धारा 376घ के अधीन यथाउपबंधित जुर्माने का संदाय करने के अतिरिक्त है।

ख भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872

7.5 आयोग ने अपनी रिपोर्ट सं. 113 द्वारा, और जैसा कि रिपोर्ट सं. 152 में दोहराया गया है, भारत के विधि आयोग द्वारा की गई सिफारिश का पृष्ठांकन किया है कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में धारा 114ख का पुरःस्थापन आवश्यक है। इससे यह सुनिश्चित हो जाएगा कि यदि किसी व्यक्ति को पुलिस अभिरक्षा में क्षतियां कारित की गई हैं और संबंधित प्राधिकारी पर साबित करने का भार होगा कि वह स्पष्ट करे कि ऐसी क्षतियां उस व्यक्ति को कैसे पहुंची।

### (iii) अपकृत्य के लिए दंड

7.6 यातना की आशंका पर नियंत्रण करने के लिए और अपकृत्य पर भयोपरक प्रभाव पड़े इसके लिए आयोग ने ऐसे कृत्य को करने वाले का कठोर दंड देने की सिफारिश की है। इस रिपोर्ट के साथ संलग्न प्रारूप विधेयक में दंड के लिए उपबंध किया गया है और इसे आजीवन कारावास और जुर्माने तक बढ़ा दिया है।

### (iv) पीड़ित को प्रतिकर

7.7 न्यायालय, किसी व्यक्ति के मामले के विभिन्न पहलुओं जैसे कि क्षति की प्रकृति, प्रयोजन, विस्तार और रीति, जिसके अन्तर्गत पीड़ित को कारित मानसिक संताप भी है, पर विचार करने के पश्चात् न्यायोचित प्रतिकर के ऊपर विनिश्चय करेगा। न्यायालय पीड़ित की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखेगा और यह सुनिश्चित करेगा कि इस प्रकार विनिश्चित प्रतिकर पीड़ित के चिकित्सा उपचार और पुनर्वास पर व्यय के लिए पर्याप्त है।

### (v) पीड़ित, शिकायतकर्ता और साक्षियों को संरक्षण



7.8 आयोग ने यह सिफारिश की है कि यातना के पीड़ित, शिकायतकर्ता और साक्षियों के विरुद्ध संभव धमकी, हिंसा या बुरे बर्ताव से संरक्षण करने के लिए एक प्रभावी प्रणाली निश्चित रूप से बनाई जाए।

**(vi) प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति**

7.9 अपकृत्य विधि के अनुसार 'उपेक्षा का परिणाम दायित्व है' इस संबंध में आयोग की यह राय है कि राज्य को नागरिकों पर उसके अभिकर्ताओं द्वारा कारित की गई क्षतियों के लिए जिम्मेदारी लेनी चाहिए और प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति संविधान द्वारा आश्वस्त अधिकारों पर अभिभावी नहीं हो सकती। प्रभुत्वसंपन्न उन्मुक्ति के अभिवाक् पर विचार करते समय, न्यायालयों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि नागरिक ही मूल अधिकारों के हकदार हैं न कि राज्य के अभिकर्ता।

7.10 उपर्युक्त विचार-विमर्श के प्रकाश में केन्द्रीय सरकार कन्वेंशन के अनुसमर्थन के विवाद्यक पर विनिश्चय कर सकती है और यदि सरकार अनुसमर्थन करने का विनिश्चय करती है तब इस रिपोर्ट के साथ संलग्न यातना निवारण विधेयक, 2017 पर भी विचार किया जा सकता है।

तदनुसार आयोग सिफारिश करता है।

(डा. न्यायमूर्ति बी.एस. चौहान)

(न्यायमूर्ति रवि आर. त्रिपाठी)  
सदस्य

(प्रो. (डा.) एस. शिवकुमार)  
सदस्य

(डा. संजय सिंह)  
सदस्य-सचिव

(सुरेश चन्द्र)  
सदस्य (पदेन)

(डा. जी नारायण राजू)  
सदस्य (पदेन)

### यातना निवारण विधेयक, 2017

एक

विधेयक

किसी लोक सेवक की सहमति या उपमति से लोक सेवक या किसी व्यक्ति द्वारा यातना, अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार करने के लिए दंड देने के लिए, पीड़ितों, परिवादियों और साक्षियों की सभी प्रकार के बुरे बर्ताव से उनके हित का संरक्षण करने के लिए और उपयुक्त रूप से पीड़ित को प्रतिकर देने के लिए तथा इनसे संबंधित या इनके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए विधेयकः,

संविधान के अनुच्छेद 20, अनुच्छेद 21 और अनुच्छेद 22 के खंड (1) और (2) और अन्य विद्यमान विधियों में यातना, अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार से व्यक्तियों का संरक्षण करने के लिए उपबंध किए गए हैं;

और भारत ने तारीख 14 अक्टूबर, 1997 को यातना और अन्य क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए हैं [जिसे संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा तारीख 10 दिसंबर, 1984 को अंगीकृत किया गया था (संकल्प सं. 39/46)] (जो यातना के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन के नाम से ज्ञात है):

और यह आवश्यक माना गया है कि कन्वेंशन को प्रभावी रूप से कार्यान्वित करने के लिए उपबंध किए जाए;

भारत गणराज्य के अड़सठवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो:-

## अध्याय 1

### प्रारंभिक

संक्षिप्त नाम और  
प्रारंभ

1. (1) इस नियम का संक्षिप्त नाम यातना निवारण अधिनियम, 2017 है।

(2) इसका विस्तार संपूर्ण भारत पर है।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे।

परिभाषाएं

2. इस अधिनियम में, जब तक संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,-

(क) इस अधिनियम में, किसी अधिनियमिती या उसके उपबंध जो किसी क्षेत्र में जिसमें ऐसी अधिनियमिती या उपबंध प्रवृत्त नहीं है, का यह अर्थ लगाया जाएगा, कि तत्समान विधि या तत्समान विधि के सुसंगत उपबंध, यदि कोई हो, उस क्षेत्र में प्रवृत्त, के प्रति निदेश है;

(ख) “विहित” से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है; और

(ग) उन शब्दों और पदों के, जो इस अधिनियम में प्रयुक्त हैं वही अर्थ होंगे जो क्रमशः भारतीय दंड संहिता में हैं। 1860 का 45

## अध्याय 2

### यातना और दंड

यातना की कोटि  
क्या आता है।

3. जो कोई लोक सेवक होते हुए या ऐसे सेवक द्वारा दुष्प्रेरित करने पर या लोक सेवक की सहमति या उपमति से,-

(क) जानबूझकर किसी व्यक्ति को, या

(ख) स्वेच्छया किसी व्यक्ति को,-

(i) घोर उपहति पहुंचाता है, या

(ii) प्राण, अंग या स्वास्थ्य के लिए खतरा है, या

(iii) कष्टदायक या लंबी पीड़ा या यंत्रणा, चाहे शारीरिक या मानसिक हो, जो क्रूरतापूर्ण, अमानवीय तथा अपमानजनक व्यवहार से कारित की जाती है; या

(iv) मृत्यु कारित करना,

जो ऐसे प्रयोजनों के लिए जैसे पीड़ित व्यक्ति से पर व्यक्ति की जानकारी या कोई संस्वीकृति, किसी ऐसे कार्य के लिए दंड देना जो उसने या पर व्यक्ति ने कारित किया हो या यह संदेह हो कि उसने या पर व्यक्ति ने कारित किया है या पर व्यक्ति को अभित्रास या विवश करना,

यातना का अपराध कारित किया है:

परंतु यह कि इस धारा में अंतर्विष्ट कोई भी बात ऐसी किसी पीड़ा या यंत्रणा को लागू नहीं होगी जो विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार कारित किए गए किसी कृत्य में अंतर्निहित या उसके आनुषंगिक कृत्य से उद्भूत या कारित की गई हो:

परंतु यह और कि जहां किसी लोक सेवक की अभिरक्षा में यातना साबित हो जाती है तब लोक सेवक पर यह साबित करने भार होगा कि, उसने जानबूझकर यातना नहीं पहुंचाई थी या ऐसे लोक सेवक द्वारा दुष्प्रेरित या उसकी सहमति या उपमति से यह कृत्य नहीं किया गया था।

स्पष्टीकरण 1- इस धारा के प्रयोजनों के लिए, भारतीय दंड 1860 का 45 संहिता की धारा 21 पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना “लोक सेवक” के अंतर्गत, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार के अधीन शासकीय हैसियत में कार्य कर रहा कोई व्यक्ति भी है।

स्पष्टीकरण 2- इसके द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि “यातना” के अंतर्गत ऐसा कोई जानबूझकर किया गया कृत्य सम्मिलित है जिसके परिणामस्वरूप इस धारा के अधीन कारित अपराध को छिपाया या ढका जा रहा है

स्पष्टीकरण 3- मात्र मानसिक संताप या प्रपीड़न के कारण उद्भूत मानसिक तनाव से यातना का अपराध गठित नहीं होगा।

यातना के लिए  
दंड।

4. (i) जहां धारा 3 में निर्दिष्ट लोक सेवक या या ऐसे लोक सेवक की सहमति या उपमति से दुष्प्रेरित कोई व्यक्ति, किसी व्यक्ति को इस प्रयोजन के लिए यातना पहुंचाता है या यातना पहुंचाने का प्रयास करता है जिससे कि वह उससे या उसमें हितबद्ध किसी व्यक्ति से कोई संस्वीकृति या कोई जानकारी बलपूर्वक प्राप्त कर सके तब इस वजह से किसी अपराध का पता चलता है, ऐसा लोक सेवक या व्यक्ति तो वह दोनों में से किसी भांति के कारावास, जिसकी दस वर्ष तक की हो सकेगी दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।

(2) जहां यातना के कारण किसी व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, वहां अपराध कारित करने वाला व्यक्ति मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडित किया जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।

(3) इस धारा के अधीन अधिरोपित जुर्माना न्यायोचित और युक्तिसंगत होगा जिससे कि पीड़ित चिकित्सा और पुर्नवास का व्यय पूरा कर सके।

(4) इस धारा के अधीन अधिरोपित कोई जुर्माना पीड़ित को संदत्त होगा।

(5) उपधारा (3) के अधीन अधिरोपित जुर्माने के अतिरिक्त, यथास्थिति, केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार ऐसा पर्याप्त प्रतिकर, जिसमें पीड़ित के पुनर्वास के लिए अंतरिम प्रतिकर भी है, का संदाय करेगी और एक जांच कराने के पश्चात् अपराध करने वाले लोक सेवक से इस प्रकार संदत्त प्रतिकर वसूलीय होगा।

### अध्याय 3 प्रकीर्ण

अपराधों का संज्ञान  
और विचारण।

5. (1) इस अधिनियम के अधीन प्रत्येक अपराध का विचारण सेशन न्यायालय द्वारा किया जाएगा।

(2) त्वरित विचारण करने के प्रयोजन के लिए सेशन न्यायालय, यथासंभव शीघ्रता के साथ, दिन प्रतिदिन के आधार

पर, अपराध का संज्ञान लेने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर विचारण समाप्त करने का प्रयास करेगा।

अपराधों का संज्ञान।

6. (1) दंड संहिता, 1973 में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन कोई न्यायालय किसी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं करेगा जब तक जिस तारीख को अपराध कारित करने का अभिकथन किया गया है उस तारीख से छह मास की अवधि के भीतर शिकायत न की गई हो:

परंतु यह कि न्यायालय, पर्याप्त आधार दर्शित करने के आधार पर उक्त छह मास की अवधि के परे शिकायत फाइल करने में हुए विलंब के लिए, माफी दे सकता है।

(2) जहां यातना का पीड़ित स्वास्थ्य, वित्तीय असमर्थता या अन्यथा के कारण शिकायत फाइल करने में असमर्थ है वहां वह सम्यक् रूप से प्राधिकृत किसी प्रतिनिधि द्वारा शिकायत फाइल करा सकता है।

(3) इस अधिनियम के अधीन प्रत्येक शिकायत विधि के अनुसार पुलिस द्वारा रजिस्ट्रीकृत की जाएगी।

(4) यातना के विरुद्ध किसी शिकायत का अन्वेषण ऐसे पुलिस अधिकारी द्वारा किया जाएगा जो पुलिस उपअधीक्षक या किसी अन्वेषणात्मक अभिकरण में तत्सम पंक्ति से नीचे की पंक्ति का ना हो जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि पुलिस अधीक्षक के पर्यवेक्षण के अधीन स्वतंत्र अन्वेषण किया गया है।

(5) अन्वेषण, शिकायत करने की तारीख से तीन मास की अवधि के भीतर पूरा हो जाना चाहिए।

अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी आवश्यक होना।

7. (1) कोई न्यायालय, किसी लोक सेवक द्वारा अपने शासकीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते हुए या कार्य करने का तात्पर्य रखते हुए इस अधिनियम के अधीन कारित किए गए किसी अभिकथित दंडनीय अपराध का संज्ञान, निम्नलिखित की पूर्व मंजूरी के सिवाय नहीं लेगा-

- (क) ऐसे किसी व्यक्ति के मामले में जो संघ के कार्य के संबंध में नियोजित है उसे, भारत सरकार के सचिव की पंक्ति में उस सरकार के अधिकारी द्वारा, केन्द्रीय सरकार की मंजूरी के सिवाय, उसके पद से नहीं हटाया जाएगा;
- (ख) ऐसे किसी व्यक्ति के मामले में जो राज्य के कार्य के संबंध में नियोजित है उसे, राज्य सरकार के सचिव की पंक्ति में उस सरकार के अधिकारी द्वारा, सरकार की मंजूरी के सिवाय, उसके पद से नहीं हटाया जाएगा;
- (ग) किसी अन्य व्यक्ति के मामले में, उसके पद से उसे उसके सक्षम प्राधिकारी द्वारा हटाया जाएगा:

परंतु यह कि अपराधी लोक सेवक को अभियोजित करने की मंजूरी की बाबत विनिश्चय आवेदन करने की तारीख से तीन मास के अपश्चात् अभियोजन करने की मंजूरी नहीं दी जाती है तब इसके असफल होने पर यह माना जाएगा कि मंजूरी दे दी गई है:

परंतु यह और कि अभियोजन करने की मंजूरी देने से, यथास्थिति, सरकार या सक्षम प्राधिकारी द्वारा लेखबद्ध कारणों के सिवाय, इंकार नहीं किया जाएगा।

(2) इस धारा के अधीन, यथास्थिति, सरकार या सक्षम प्राधिकारी के विनिश्चय से कोई व्यक्ति व्यथित होता है तो वह, ऐसे प्ररूप और रीति में ऐसी फीस के साथ, जो विहित की जाए, विनिश्चय की तारीख से नब्बे दिन के भीतर उच्च न्यायालय में अपील फाइल कर सकेगा।

(3) उच्च न्यायालय इस अपील का यथासंभव शीघ्र निपटान करने का प्रयास करेगा, इस अपील को फाइल करने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर इसका निपटान करने की अधिमानतः दी जाएगी।

उपधारणाएं।

8. संदेहों को दूर करने के लिए इसके द्वारा यह घोषणा की जाती है कि तथ्य यह है कि इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का गठन करने के लिए कोई कृत्य-

(क) उस समय कारित किया गया था जब युद्ध या युद्ध की धमकी की स्थिति थी या जहां आपातकाल की उद्घोषणा प्रवर्तन में थी,

(ख) किसी उच्चतर अधिकारी या लोक प्राधिकारी के आदेश पर कारित किया गया था, के आधार पर,

ऐसा अपराध का प्रतिवाद नहीं होगा।

पीड़ितों,  
शिकायतकर्ताओं और  
साक्षियों का संरक्षण।

9. (1) यातना के पीड़ितों, शिकायतकर्ताओं और साक्षियों की सभी प्रकार के बुरे बर्ताव, हिंसा, हिंसा की धमकी या शारीरिक उपहति या मानसिक आघात या यातना की पुनरावर्ति से संरक्षण करने के लिए राज्य सरकार द्वारा व्यवस्था करने का कर्तव्य और जिम्मेदारी होगी।

(2) उपधारा (1) के अधीन संरक्षण, शिकायत के पेश किए जाने से विचारण के समाप्त होने तक और इसके पश्चात् तब तक जब तक राज्य सरकार का युक्तियुक्त रूप से यह समाधान नहीं हो जाता है कि ऐसे संरक्षण के अब आवश्यकता नहीं है, की व्यवस्था की जाएगी।

(3) उपधारा (1) के अधीन संरक्षण के अंतर्गत पीड़ित, शिकायतकर्ता और साक्षियों को शारीरिक सुरक्षा की आवश्यक व्यवस्था सम्मिलित है।

(4) राज्य सरकार, इस धारा के अधीन किसी पीड़ित, शिकायतकर्ता को दिए गए संरक्षण के बारे में, संबंधित न्यायालय को सूचित करेगी और न्यायालय समय समय पर इस धारा के अधीन शिकायतकर्ताओं, पीड़ितों और साक्षियों को दिए गए संरक्षण की आवश्यकता का पुनर्विलोकन करेगा और इस निमित्त समुचित आदेश पारित करेगा।

(5) राज्य कारागार में अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित प्रत्येक व्यक्ति की उचित चिकित्सा परीक्षा सुनिश्चित करेगा और विचारण न्यायालय को ऐसी चिकित्सा परीक्षा की रिपोर्ट भेजेगा।

जमानत से संबंधित  
उपबंध।

10. (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 378 के उपधारा (3) में अंतर्विष्ट किसी बात में होते हुए भी जमानत मंजूर या

1974 का 2



इंकार करने के सेशन न्यायाधीश के आदेश के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय में की जाएगी।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 की कोई बात किसी ऐसे मामले के संबंध में लागू नहीं होगी जिसमें इस अधिनियम के अधीन कारित अपराध के किसी आरोप के संबंध में किसी लोक सेवक को गिरफ्तार करने का कोई मामला अन्तर्गस्त हो।

किसी अन्य विधि के अल्पीकरण में अधिनियम नहीं है।

11. इस अधिनियम के उपबंध तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंधों के अतिरिक्त होंगे न कि उसके अल्पीकरण में होंगे, और यदि कोई असंगतता है तो, इस अधिनियम के उपबंधों का असंगतता की सीमा तक किसी ऐसी विधि के उपबंधों पर अध्यारोही प्रभाव होगा।

नियम बनाने की शक्ति।

12. (1) केन्द्रीय सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकेगी।

(2) विशेष रूप से और पूर्वगामी शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किसी विषय के लिए उपबंध कर सकेंगे:-

(क) यातना के मामलों का निवारण करने के लिए अपेक्षित कार्यवाही:

(ख) सिविल सोसाइटी को सम्मिलित करना और कैदियों के साथ सभ्य व्यवहार, जो उनके मानव अधिकारों के अनुरूप हो, सुनिश्चित करने के लिए कार्यवाही करना:

(ग) विधि प्रवर्तन कार्मिक, सिविल या सेना या चिकित्सा कर्मचारी, लोक कर्मचारी और अन्य व्यक्तियों को, जो गिरफ्तारी, निरोध या कारावास के किसी प्ररूप में किसी व्यक्ति की अभिरक्षा, पूछताछ या व्यवहार में अंतर्गस्त हो सकते हैं, उनके प्रशिक्षण की रीति के संबंध में:

(घ) पुलिस अभिरक्षा की निगरानी;

(ड) निष्पक्ष और तुरंत अन्वेषण प्रक्रियाएं;

(च) किस प्ररूप और रीति में अपील फाइल की जा सकती है और धारा 7 की उपधारा (2) के अधीन अपील के ऐसे ज्ञापन के साथ संलग्न फीस;

(छ) यातना की शिकायत फाइल करने में सहायता, जहां आवश्यक हो;

(ज) पीड़ितों को प्रतिकर का संदाय करने के संबंध में प्रक्रिया;

(झ) कोई अन्य विषय जिसकी बाबत इस अधिनियम के अधीन नियम बनाना अपेक्षित है।

(3) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र प्रत्येक सदन के समक्ष जब सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा। यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी। यदि उस सत्र में या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा। यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाए कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो इसके पश्चात् वह, यथास्थिति केवल ऐसे रूप में प्रभावी होगा या निष्प्रभाव हो जाएगा; तथापि, नियम के ऐसे परिवर्तित या बातिलीकरण होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

#### अध्याय 4

#### दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में संशोधन

धारा 357ख के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन।

12. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 357ख के स्थान पर 1974 का 2 निम्नलिखित धारा 357ख का प्रतिस्थापन, अर्थात्:-

भारतीय दंड संहिता की धारा 326क या धारा 376घ या यातना निवारण अधिनियम, 2017 की धारा 4 के अधीन जुर्माने के अतिरिक्त प्रतिकर

“357ख- राज्य सरकार द्वारा धारा 357क के अधीन और यातना निवारण अधिनियम, 2017 की धारा 4 की उपधारा (5) के अधीन संदेय प्रतिकर, भारतीय दंड संहिता की धारा 326क या धारा 376घ के अधीन या उक्त अधिनियम की धारा 4 की

1860 का 45

उपधारा (4) के अधीन पीड़ित को जुर्माने के संदाय के अतिरिक्त होगा।

स्पष्टीकरण.- इस धारा के प्रयोजनों के लिए अभिव्यक्ति “पीड़ित” का वही अर्थ होगा जो धारा 2 के खंड (ब क) में है”।

#### अध्याय 4

#### भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 का संशोधन

नई धारा 114ख का  
अन्तः स्थापन।

13. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 में धारा 114क के पश्चात् निम्नलिखित धारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात्:-

1872 का 1

“114-ख (1) किसी व्यक्ति को क्षति कारित किए गए, अभिकथित कार्य द्वारा होने वाले अपराध के लिए (पुलिस अधिकारी के) अभियोजन में यदि यह साक्ष्य है कि क्षति उस अवधि के दौरान कारित की गई थी जब वह व्यक्ति पुलिस की अभिरक्षा में था तो न्यायालय यह उपधारणा कर सकता है कि उस पुलिस अधिकारी ने क्षति कारित की थी जिसकी अभिरक्षा में वह व्यक्ति उस अवधि के दौरान था।

(2) न्यायालय यह विनिश्चय करने में कि उसे उपधारा (1) के अधीन उपधारणा करनी चाहिए या नहीं सभी सुसंगत परिस्थितियों को ध्यान में रखेगा जिनके अन्तर्गत विशेषकर है,

- (क) अभिरक्षा की अवधि,
- (ख) क्षतिग्रस्त व्यक्ति द्वारा कोई ऐसा कथन कि उसे किस तरह से क्षति पहुंची थी वह कथन ऐसा हो जो साक्ष्य में ग्राह्य हो;
- (ग) उस चिकित्सा व्यवसायी का साक्ष्य जिसने क्षतिग्रस्त व्यक्ति का उपचार किया हो, और
- (घ) किसी ऐसे मजिस्ट्रेट का साक्ष्य जिसने क्षतिग्रस्त व्यक्ति का कथन अभिलिखित किया हो या अभिलिखित करने का प्रयास किया हो”।